

सर्वव्यापी शिक्षा और स्वास्थ्य का
भारत में सुनिश्चितीकरण

वादा न तोड़ो अभियान
नवम्बर 2007

नौ का वादा!

भारत के हर बच्चे के उज्ज्वल भविष्य के लिए 9% जीडीपी का वादा

हम भारत के बच्चे हैं। हम लोग मतदाता नहीं हैं, लेकिन हमारा मानना है कि बच्चों की आवाज़ें वयस्कों के मतों से अधिक शक्तिशाली हो सकती हैं। और हम यह जानते हैं कि अपने भविष्य की रक्षा के लिए अब हमारा बोलना अनिवार्य हो गया है।

हम दुनिया भर की सरकारों की यूएन सहस्राब्दी घोषणा के अनुसार 2015 तक गरीबी और सामाजिक निष्कासन को खत्म करने की वचनबद्धता की प्रशंसा करते हैं। इस वादे को पूरा करने के लिए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों और राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम जैसे किए जा रहे प्रयासों की हम सराहना करते हैं।

एक आवाज़ में आप से कहते हैं, 'वादा न तोड़ें!' शिक्षा पर 6% जीडीपी हम चाहते हैं कि भारत का हर बच्चा यह जाने कि '9% जीडीपी है!' क्योंकि स्वास्थ्य और शिक्षा हर बच्चे, हर परिवार को बुनियादी अधिकार है। और हम आपकी सहायता, आपका आश्वासन चाहते हैं ताकि हमारा भविष्य भारत की प्राथमिकता हो।

सर्वव्यापी शिक्षा और स्वास्थ्य का भारत में सुनिश्चितीकरण

वादा न तोड़ें अभियान नवम्बर 2007

सर्वव्यापी शिक्षा और स्वास्थ्य का भारत में सुनिश्चितीकरण

नवम्बर 2007

प्रकाशन :

वादा न तोड़ें अभियान – राष्ट्रीय सचिवालय, सी-1/ई, दूसरा माला, युसुपू सराय गुरुद्वारा के पीछे, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110016, भारत –
टेलीफोन : 91-11-46082371 फ़ैक्स : 91-11-46082372, ई-मेल :

Info@wadanadoto@wadanatodo.net, www.wadanatodo.net.

अनुवाद : मीनाक्षी वाजपेयी

सहयोग

यह आरम्भ से ही ऑक्सफेस (ओएक्सएफएएम) की साझेदारी तथा डॉ. विमला रामाचंद्रन, प्रो. इमाराना कादिर और सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नेंस एकाउंटेंब्लिटी (सीबीजीए) के सहयोग से संभव हो सका है।

मुद्राण

(एनएम्पलॉयड दलित यूथ एम्पावरमेंट मिशन (यूडीवाईईएम) ए-1, हनुमान मंदिर परिसर, कनाट प्लेस, दिल्ली

वादा न तोड़ो अभियान सरकार से गरीबी और सामाजिक बहिष्कार तथा भेदभाव को समाप्त करने के वादे की जावबदेही के लिए शुरू किया गया एक राष्ट्रीय अभियान है। हम यह काम सं.रा. सहस्राब्दी विकास घोषणा (2000), राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा किए गए वादों की निगरानी करके कर सकते हैं – जहां हमारे विशिष्ट केंद्र बिन्दु स्वास्थ्य तथा शिक्षा के अधिकार होंगे। वादा न तोड़ो अभियान भारत के 23 राज्यों में फैले हुए 2000 से अधिक अधिकारों के लिए काम करने वाले समूहों द्वारा चलाया जा है, जो सामाजिक समूहों को जोड़ने और रणनीतिक प्रासंगिकता के मुद्दे पर नीतिकारों को व्यस्त रखने के लिए एकजुट हुए हैं।

वादा न तोड़ो के अन्य प्रकाशन :

- अधिकारों के प्रति सुरक्षित करना – सहस्राब्दी विकास लक्ष्य, सितम्बर 2005
- द सकेंड सिविल सोरइटी रिव्यू ऑफ द नेशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम, मई 2005
- एनआरईजीए : द प्रॉमिस ऑफ वर्क (एरिसॉर्स बुक), नवम्बर, 2006
- द पीपुल्स वर्डिक्ट – आउटकम्स ऑफ नेशनल ट्रिब्यूनल ऑन एनआरईजीए, दिसम्बर, 2006
- नार्इन इस मार्इन – 9% जीडीपी फॉर हेल्थ एंड एजुकेशन (ए प्राइमर)

जनवरी 2007

- जेंडर गवर्नेस – रिव्यूइंग द वीमेंस एजेंड इन द नेशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम, मार्च 2007
- एंडिंडा सोशल एक्सक्लूजन – ऐ रिव्यू ऑफ दलित एजेंडा इन नेशनल कॉमन प्रोग्राम, अप्रैल 2007
- प्रॉमिसेस ऑर नॉट एनफ! ए सिविल सोसाइटी रिव्यू ऑफ थ्री इयर्स ऑफ द नेशनल कॉमन मिनिमम प्रोग्राम, मई 2007
- इंडियांज प्रोग्रेस ऑन द मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स – ए मिड टर्म चेकलिस्ट (जुलाई 2007)

अनुक्रम

आमुख	7
डॉ. शांथा सिन्हा	
प्रस्तावना	11
भारत में बुनियादी शिखा की स्थिति : एक अवलोकन	17
डॉ. विमला रामाचन्द्रन	
भारत में बुनियादी स्वास्थ्य की स्थिति : एक अवलोकन	47
डॉ. इमराना कादिर	
केन्द्रीय बजट में शिक्षा	87
सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नेस एकाउंटैब्लिटी (सीबीजीए)	
केन्द्रीय बजट में स्वास्थ्य	
सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नेस एकाउंटैब्लिटी (सीबीजीए)	105
उपसंहार	125

प्रकाशकीय टिप्पणी

भारत को सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) और सहस्राब्दी घोषणा में अंकित व्यापक वैश्विक उद्देश्यों की उपलब्धि में एक सर्वथा महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। भारत द्वारा की गई प्रगति महत्वपूर्ण रूप से यह निर्धारित करेगी कि संपूर्ण विश्व एडीजी के सर्वाधिक क्रांतिक लक्ष्यों यथा शिशु मृत्यु दर तथा मातृ मृत्यु दर में कमी, स्कूलों में नामांकन एवं सतत शिक्षा और पानी में स्वच्छता तक सर्वव्यापी पहुँच को उपलब्ध कर सकेगा या नहीं।

भारत को भावी वैश्विक कार्यक्रम के लिए भी महत्वपूर्ण योगदान करना है। विश्व के सबसे बृहत् प्रजातंत्र की अपनी भूमिका में हमें अपने महत्वपूर्ण तकनीकी, बौद्धिक, और वित्तीय और सांस्कृतिक सांसाधनों को आधुनिक वैश्विक समाज के आदर्शों की उपलब्धि हेतु लगाना है। मानवीय सम्मान के साथ जीना और गरीबी तथा सामाजिक बहिष्कार के बंधनों से मुक्त वैश्विक भविष्य के अनिवार्य भाग हैं।

यह रिपोर्ट उस चुनौती का स्मार है जिसका भारत अपने सभी नागरिकों के स्वास्थ्य और शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने हेतु सामना कर रहा है और इस विचार का सुदृढीकरण है कि इन सेवाओं तक सर्वव्यापी पहुँच को सुगम बनाने के लिए भारत के पास सक्षमता और संसाधन मौजूद हैं जरूरत है तो सिर्फ राजनैतिक इच्छाशक्ति की।

यह रिपोर्ट इसे 18 वर्ष तक की आयु के उन बच्चों की प्रशिक्षित भी है। जिन्होंने सरकार को भारत के जीडीपी 9% राशि स्वास्थ्य और शिक्षा के मद पर सरकारी व्यय के रूप में लगाने के अपने वादे का स्मरण दिलाने के लिए कार्रवाई की है। 'नो का वादा' अभियान के तहत एकत्र हुए पहले फरवरी, 2007 में अपने आवेदन पत्र के साथ प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह तक पहुंचने में सफल हुए। इसके शीघ्र बाद ही संघीय बजट 2007-2008 में स्वास्थ्य और शिक्षा के आबंटन में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई हालांकि जीडीपी के समस्त निवेशों की दृष्टि में यह उदासीन औसत ही है – शिक्षा के लिए 3% और स्वास्थ्य के लिए 1% से भी कम ही।

यह प्रकाशन इसी कारण उसी समय प्रकाशित किया जा रहा है जब 'नेशनल एडवोकेशी' प्रयास का दूसरा चरण देश के विभिन्न भागों से आए करीब 300000 बच्चों के हाथों शुरू होगा, जो यह प्रकाशन इस कारण उस समय

प्रकाशित किया जा रहा है, जब 'नेशनल एडवोकेसी' के प्रयास के दूसरे चरण का काम इस देश के सभी भागों में करीब 300000 बच्चों के हाथों होगा जो राज्य विधायिकाओं और संसद के अपने निर्वाचित सदस्यों को जीडीपी के 9% के लिए संसूचित और प्रेरित करेंगे कि वे भारत के हरेक बच्चे के भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए आवाज उठाएं।

वादा न तोड़ो अभियान

13 नवम्बर, 2007

आमुख

डॉ. शांथा सिन्हा

अध्यक्ष, राष्ट्रीय आयोग, बाल अधिकार सुरक्षा, भारत सरकार

'स्वास्थ्य और शिक्षा तक सर्वव्यापी पहुंच' शीर्षक प्रतिवेदन गरीबों के हक और सभी बुनियादी सेवाएं अधिकार स्वरूप उपलब्ध कराने के सरकार के दायित्व की बहस को केन्द्रित करने के लिए महत्वपूर्ण है। गरीबों के जीवन और सम्मान के असंख्य संघर्षों को जीवन्त में समर्थता हेतु प्रलिखित अध्ययन और शोध अत्यावश्यक उपकरण है।

भारतीय संविधान का सार न्याय और समानता का आग्रह है। मौलिक अधिकार और निदेशक नीतियों के अध्यायों के द्वारा नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के प्रति सरकार का दायित्व अपरिवर्तनीय है। यह भाव इतना व्यापक है कि इस विषय में दो मत नहीं हो सकते हैं कि अधिकारों का उपयोग और उपजातंत्र एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। मुद्दा यह नहीं है कि 'अधिकार क्यों' बल्कि यह है कि उन्हें वास्तविक कैसे बनाया जाए।

जो हो, भारत की प्रगति का हिसाब करने से यही पता चलता है कि स्वतंत्रता और सम्मान तक ले जाने वाली समानता और सार्वजनिक साधनों तक पहुँच का मुद्दा अभी तक अधूरा है प्रस्तुत प्रतिवेदन शिक्षा और स्वास्थ्य के अनिवार्य अधिकारों पर तो केन्द्रित है ही – यह यह भी दर्शाता है कि गरीबी के दूसरे मुद्दे किस तरह इन अधिकारों की उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

यह स्वीकार्य नहीं है कि आजादी के साठ साल बाद भी लाखों बच्चे स्कूल से बाहर रहकर किसी न किसी प्रकार के काम में लगे हुए हैं और यह भी इसकी गारंटी नहीं है कि जो स्कूल में हैं वे वहीं पढ़ते ही रहेंगे। इसकी आशा

भी अनावश्यक है कि प्रथम कक्षा में नामांकित हर शिशु दसवीं कक्षा तक पहुंच जाएगा और उसे वर्गों के सभी अंगों – शिक्षकों और वस्तुतः निःशुल्क शिक्षा का लाभ मिलेगा। प्रतिवेदन यह भी दर्शाता है कि निवेश की कमी के कारण स्कूलों को शिक्षार्थियों की पहली पीढ़ी को संभालने का सामर्थ्य नहीं है, परिणामस्वरूप बच्चे स्कूल से निकाल दिए जाते हैं और वे मजदूर बन जाते हैं। शिक्षा का मौलिक अधिकार शब्दाडंबर भर बने रहने की परिधि से आगे बढ़े और कोई बच्चा स्कूल के बाहर न छूट जाए इसकी सुनिश्चितता के लिए सरकार की जीडीपी के 6% के निवेश की प्रतिबद्धता सच करनी होगी।

स्वास्थ्य सेवाओं के लिए प्रावधानों की अप्रत्याप्तता दुःखद है। बच्चों के सतत कायम कुपोषण, शिशु मृत्यु दर और मातृ-मृत्यु दर में अत्यन्त धीमी कमी और स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव में असमर्थता में वृद्धि और स्वास्थ्य चिकित्सा में बढ़ते व्यय से यह परिलक्षित होता है। उन गरीबों की दुर्दशा की कल्पना से ही कोई कांप जाएगा जिन्हें स्वास्थ्य चिकित्सा तक पहुँच नहीं है और फलतः भाग्य के सामने घुटने टेक कर सम्मान खोकर सम्पूर्ण असमर्थता के शिकार हो जाते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए निवेद की कमी चिंता का कारण है अतः यह अनिवार्य है कि जीडीपी का 3% स्वास्थ्य के लिए आबंटित हो।

शिक्षा, स्वास्थ्य और जल के अधिकार बुनियादी मानवीय अधिकार हैं जिससे इस अत्यधिक अन्यायी समाज से तालमेल रखने की व्यक्ति की योग्यता में वृद्धि होती है। वैयक्तिक मानवाधिकार की उपलब्धि हमारे देश के हर नागरिक से संबद्ध है कि वह अपने सहनागरिकों के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करे और इस क्रम में सर्वाधिक अर्थपूर्ण लोगों के किए साहसपूर्ण ढंग से आवाज उठाए। सार्वजनिक रूप से एकता की इस भावना की अभिव्यक्ति से संपूर्ण समाज के नैतिक विकास में वृद्धि होती है। फलस्वरूप इससे देश की सामर्थ्य की वृद्धि होती है। फलस्वरूप इससे देश के सामर्थ्य की वृद्धि और सेवा प्रदान करने के सरकारी दायित्व का वातावरण बनता है। अंततः सरकार (राज्य) की एकमात्र आस्त्र है जिसके द्वारा गरीब वैध रूप से अपने अधिकारों की मांग कर सकते हैं। एक सम्पन्न प्रजातंत्र वहीं है जहां सरकार अपने नागरिकों के अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाती है और एक न्याय एवं समातपूर्ण समाज के निर्माण के लिए दायित्वों को पूरा करती है।

शांथा सिन्हा

दिल्ली, भारत

भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा की स्थिति

राष्ट्रीय विकास में गंभीर सवाल

हम 2007 में कहां खड़े हैं?

वर्ष 2007 सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (2000-2015) का मध्य मार्ग चिन्ह और इस वाद के साथ सत्ता में आई सरकार का चौथा साल है कि राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के जरिए सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को पूरी तरह लागू किया जाएगा। वर्ष 2007 भारत की साठवीं सालगिरह के साल के रूप में ही महत्व है। तथापि 9% विकास के बावजूद, 'दूसरे भारत' में लाखों निर्धन भारतीय अधिकांश बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं और व्यापक भूखमरी, निरक्षरता और खराब स्वास्थ्य के शिकार हैं।

भारत में गरीबी – मुख्य संकेतक

- 83.60 करोड़ भारतीय गरीब और असुरक्षित हैं।
- संयुक्त राष्ट्र मानव विकास तालिका पर 177 देशों में 126वें नवम्बर पर हैं, दोनों का यह क्रम बताता है कि वहां स्वास्थ्य, शिक्षा और बेहतर जीवन स्तर मानक किना सुनिश्चित है।
- मातृ-मृत्यु और नवजात मृत्यु दर के मामले में भारत के निर्धनतम जिले सब-सहारा अफ्रीका से भी बदतर हैं।
- किसी भी अन्य देश की तुलना में भारत में ऐसे लोगों की संख्या सबसे ज्यादा है जिनकी शिक्षा तक पहुँच के बगैर हैं।
- भारत की गरीबी से उबरना नागरिक शिक्षा, स्वास्थ्य, जल और स्वच्छता की गुणवत्ता और उस तक पहुँच में उल्लेखनीय विस्तार और सुधार आए बिना संभव नहीं है।

स्वास्थ्य और शिक्षा तक सर्वव्यापी पहुँच का वादा

सर्वव्यापी स्वास्थ्य और शिक्षा का वादा सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (एमडीजी) और राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम (एनसीएमपी) में एक समान है। इसके अलावा सरकार ने 83वां संवैधानिक संशोधन (भारत सरकार, 2002) के जरिए प्राथमिक शिक्षा को 6-14 आयु वर्ग के हरेक बच्चे का मौलिक अधिकार बनाने की प्रतिबद्धता दिखाई है।

भारत में शिक्षा – मुख्य संकेतक

- भारत में सिर्फ 66% लोग साक्षर हैं। (76% पुरुष और 54% महिलाएं)
- हालांकि 6-11 आयु वर्ग के 90 प्रतिशत बच्चे प्राथमिक स्कूलों में औपचारिक रूप से नामांकित होते हैं, करीब 40 प्रतिशत शुरुआती स्तर पर ही स्कूल छोड़ देते हैं। अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और मुसलिम बच्चों (विशेष रूप से लड़कियों) का नामांकन दर अभी भी राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है।
- सर्व शिक्षा अभियान के लागू होने के चार साल बाद मार्च, 2005 तक 6-14 आयु वर्ग के 1.36 करोड़ (40 प्रतिशत) बच्चे भी स्कूल से बाहर हैं।
- भारत के आधे स्कूलों छत टपकती है या वहां पानी सप्लाई नहीं है, 35% के पास ब्लैक बोर्ड या फर्नीचर नहीं है और लगभग 90% के पास उपयोग लायक शौचालय नहीं है।
- सरकारी तौर पर शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 1:40 है कुछ राज्यों के वर्गों में अभी भी यह अनुपात 1:80 है। हर एक किलोमीटर की परिधि में सकूल रहने के निर्धारित मानक अभी भी पूरा नहीं किया जा रहा है।
- कुपोषण, भूखमरी और खराब स्वास्थ्य अभी मुख्य समस्याएं हैं जो व्यापक रूप से वर्गों में अनुपस्थित और पढ़ाई को बाधित करती हैं। इसके अलावा घरेलू कामकाज और बाल मजूदरी बड़े पैमाने पर बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों को बीच में स्कूल छोड़ने के लिए प्रभावित करते हैं।
- वैश्विक मातृ मृत्यु और बाल मृत्यु में से 20% भारत में होते हैं और विश्व में सबसे ज्यादा मातृ मृत्यु की अंदाजित संख्या 138,000 यहीं की है।¹
- संयुक्त राष्ट्र की गणना बताती है कि जन स्वास्थ्य पर जीडीपी का सबसे कम खर्च करने वाले विश्व भर के देशों में भारत सबसे नीचे 18वें नम्बर पर है।
- भारत की तकरीबन 67% आबाद के पास जरूरी दवाइयों तक पहुँच नहीं है।

- भारत में नवजात मृत्यु दर (आईएमआर) 1998-99 के 67.6 से घटकर 2005-06 में 57 हो गई। केरल ने इस दिशा में काफी तरक्की की है, वहां आईएमआर 15/1000 जन्म है। जबकि पूरे देश में उत्तर भारत की स्थिति सबसे बदतर है, वहां आईएमआर 73/1000 जन्म है।
- मातृ मृत्यु दर (एमएमआर) वर्तमान में प्रति 1000 जन्म सिर्फ 4 है। विश्व भर में सबसे ज्यादा मातृ मृत्यु भारत में होती है।
- 6-35 माह के 79% बच्चे और 50% से अधिक में खून की कमी है और 40% मातृ मृत्यु गर्भावस्था और प्रसव के कारण खून की कमी और पोषण के अभाव के कारण होते हैं।
- देश के गांवों में सिर्फ 585 अस्पताल हैं जबकि शहरी इलाकों 985 अस्पताल हैं। भारत में पंजीकृत 6,39,729 डॉक्टर में से केवल 67,576 ही सार्वजनिक क्षेत्र में हैं।
- ग्रामीण इलाकों के अस्पतालों में बेडों की संख्या शहरी इलाकों की तुलना में लगभग पंद्रह गुना कम है।

कार्यवाही का आह्वान

‘नौ का वादा’ – यह बच्चों की रैली का आह्वान है जो फरवरी, 2007 में 200,000 बच्चों ने दिया था। जब उन्होंने प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को आवेदन दिया था कि वे राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के वादे के अनुसार स्वास्थ्य और शिक्षा पर सरकारी व्यय को भारत के जीडीपी के 9% तक बढ़ाएं।

स्वास्थ्य और शिक्षा की स्थिति के प्रतिवेदन का प्रकाशन ‘नौ का वादा’ अभियान के प्रयासों के समर्थन में किया गया है और इसमें देश के सामने खड़ी चुनौतियों का दिग्दर्शन प्रस्तुत करते हुए आंकड़ों और विशेषज्ञों तथा सक्रिय व्यक्तियों की कुछ महत्वपूर्ण अनुशांसाओं का खुलासा किया गया है ताकि स्वास्थ्य और शिक्षा की सर्वव्यापक सुगमता की चुनौती का सामना किया जा सके।

इस रिपोर्ट के मूल सिद्धान्तों से निकले मुख्य निष्कर्ष हैं :

1. अधिकार, दान नहीं

स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों भारतीय संविधान में अधिकार हैं, बाद में

मौलिक बन रही हैं। इसलिए भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि नागरिकों को ये सेवाएं मुहैया कराए। स्वास्थ्य, शिक्षा और पानी तथा स्वच्छता न तो व्यापारिक सेवाएं हैं और न ही नागरिकों को मिलने वाले दान जब बात बुनियादी मानवाधिकार को हो तो नागरिक न तो उपभोक्ता और न ही भीख मांगने वाले होते हैं।

2. सार्वजनिक, निजी नहीं

यह पूरी तरह सरकार की जिम्मेदारी है कि सुनिश्चित करे कि हर नागरिक को अच्छी और बेहतर स्वास्थ्य मिले।

जरूरत के मुताबिक तय क्षेत्र और परिणाम के अनुरूप संवाएं उपलब्ध कराए बिना सरकार मुख्य सेवा प्रदाता की अपनी भूमिका से पल्ला नहीं झाड़ सकती। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन द्वारा दर्शाए गए सेवाओं को अंग्रीभूत करने की उपलब्धि पाने के लिए 21,983 नए उप केंद्रों और 200000 एएनएम की जरूरत होगी ताकि 2001 की जनगणना की आबादी का मानक पूरा हो सके।² कोई निजी अथवा स्वयंसेवी एजेंसी इस जरूरत को पूरा नहीं कर सकती है। परिवर्तन और निगरानी के लिए निजी अथवा गैर-सरकारी क्षेत्रों का उपयोग, वैकल्पिक प्रदाता की तरह नहीं होता।

3. शिक्षा और स्वास्थ्य सामाजिक निवेश है; न कि सार्वजनिक खर्च

एनसीएमपी का लक्ष्य शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च बढ़ाकर जीडीपी का 6% और स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्च जीडीपी का 2.3% करना है जो कि किए गए वादे को पूरा करने की रणनीति है। हालांकि आज तक भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा पर किया जा रहा खर्च निराशाजनक रूप से बहुत ही कम है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर भारत में जीडीपी का 1% से भी कम खर्च कियसा जा रहा है श्रीलंका और सिएरा लिओन जैसे देशों में स्वास्थ्य पर होनेवाले सार्वजनिक खर्च से भी कम है।

भारत में शिक्षा पर होने वाला सार्वजनिक खर्च जीडीपी के 3% से जरा सा ज्यादा है।

4. निःशुल्क, उपभोक्ता शुल्क नहीं

यहां तक कि निर्धनतम व्यक्ति भी अपने बच्चे की स्कूली पोशाक पर प्रति

2. डब्ल्यूएचओ की बुलेटिन, दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्रीय फोरम (भाग10, 11.7.2006 को जारी) – स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री अंबुमणि रामदास द्वारा

बच्चा प्रति कम से कम 350 रुपए खर्च करता है। (यह रकम प्रतिदिन 100 रुपए कमाने वाले परिवार की मासिक आय के 10% से भी ज्यादा है।), इसके अलावा स्टेशनरी, ट्रांसपोर्ट और अगर ट्यूशन फीस भी जुड़े तो और अधिक खर्च रकता है। उपभोक्ता शुल्क के लागू किए जाने से स्वास्थ्य और सेवा तक अपनी पहुँच के लिए संघर्ष कर रहे परिवारों की अदृश्य लागत पर बोझ और बढ़ जाता है और इससे इन गरीबों द्वारा देश के समस्त जीडीपी में दिए गए मान्य आर्थिक योगदान को भी नकार दिया जाता है।

5. निर्धनतम के इर्द-गिर्द योजना

सरकार को अपनी योजना, निवेश और में परंपरागत हाशिए समूहों की जरूरतों को प्राथमिकता देनी चाहिए। ढांचागत सुविधाओं की योजना बनाने और संसाधनों के आवंटन के दौरान देश के सर्वाधिक गरीब जिलों और महिलाओं, बच्चों, विकलांगों सहित दलित, आदिवासी, अधिसूचना विमुक्त जनजाति और मुस्लिम अल्पसंख्यकों जैसे समुदायों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

6. सेवा की समरूपता गुणवत्ता

मानव विकास की उपलब्धि सुनिश्चित करने के क्रम में स्वास्थ्य और शिक्षा की गुणवत्ता अहम कारण है जो इन सेवाओं के परिणाम में अभिष्ट होते हैं। उन राज्यों में जहां ज्यादा शिक्षक हैं (शिक्षक विद्यार्थी अनुपात निम्न हैं), जहां कोष मिलता है और उपयोग में आता है और जहां ज्यादा वर्ग-कक्ष हैं और थोड़े से एकल-शिक्षक स्कूल हैं। – कुल मिलाकर शैक्षिक उपलब्धि ज्यादा बेहतर हासिल हुई है।

देश के सर्वाधिक निर्धन क्षेत्रों में भी सेवाओं की गुणवत्ता को कम से कम राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों के स्तर पर मानकों के अनुरूप होना चाहिए और सक्रिय स्थानीय भागीदारी, सूचनाओं के लेदेन और उत्तरदायित्व के माध्यम से इसे कम से कम तात्कालिक प्रबंधन और वृद्धि के द्वारा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

भारत में बुनियादी शिक्षा की स्थिति : एक अवलोकन

विमला रामचंद्रन1

संदर्भ : हम कहां खड़े हैं?

प्राथमिक शिक्षा, महिला शिक्षा और शक्तिकरण पर शोध के लिए जब हमने देश भर की यात्रा की तो यह आनन्ददायक के साथ-साथ क्षुब्ध करने वाला

भी रहा। इस दौरान जहां यह बात सामने आई कि गरीब परिवारों के लोग भी अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने चाहते हैं ताकि गरीबी के चक्र को तोड़ा जा सके और गरीबों में मौजूदा अशिक्षा के सतर से ऊपर उठा जा सके। वहीं मिलों तक बंजर जमीन, कंगाल, ग्रामीण इलाकों, नाकाम स्वास्थ्य केंद्र और प्राथमिक स्कूलों के साथ-साथ खराब सड़कों ने इस डरावनी सच्चाई की याद दिला दी कि भारत असीम असमानताओं और गैर-बराबरी वाला देश है।

देश की आजादी के समय कुल आबादी का पांच फीसदी से भी कम हिस्सा साक्षर था। आजादी के बाद साक्षरता की दर में बढोत्तरी के प्रयास हुए मगर राज्य के नीति निर्देशक तत्व (अनुच्छेद 45) में शिक्षा हासिल करने को बाध्यकारी अधिकार की जगह ऐच्छिक बाध्यता के रूप में रखा गया।

सुप्रीम कोर्ट ने 1999 में उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश सरकार के मुकदमें में फैसला देते हुए अनुच्छेद 21 के तहत प्राथमिक शिक्षा को किसी व्यक्ति के जीवन और आजादी के मौलिक अधिकार की तरह प्रमुख पक्ष माना। इसके बाद 2002 में संसद ने संविधान के 86वें संशोधन के रूप में प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बना डाला।

2001 की जनगणना में दिखाया गया है कि शिक्षा के प्रसार के लिए हारी कई योजनाओं और कार्यक्रमों के बावजूद केवल 65.38 प्रतिशत लोग ही शिक्षित (75.85 प्रतिशत पुरुष और 54.16 प्रतिशत महिलाएं) हो पाए हैं। चौंकाने वाला तथ्य यह है कि 6-14 साल के 38.41 प्रतिशत लड़के और 51.88 प्रतिशत लड़कियां स्कूल ही नहीं जाते।

जबकि शिक्षा विभाग (चुनिंदा शिक्षा के आंकड़े भारत सरकार, 2006) के आंकड़ों में दावा किया गया है कि 6-10 साल के 99 प्रतिशत लड़के और 82 प्रतिशत लड़कियां स्कूलों में दाखिला लेते हैं। वहीं भार सरकार के नेशनल सैम्पल सर्वे (एनएसएस) (61वां चक्र, 2004-05) की रिपोर्ट के मुताबिक ग्रामीण इलाकों के 80 प्रतिशत लड़के और 73 प्रतिशत लड़कियां और शहरी

1. डॉ. विमला रामचन्द्रन – भारत के सामाजिक क्षेत्रों के कार्यक्रमों की योजना, रूपरेखा तैयार करना और प्रबंधन में विशेषज्ञता। खास कर समेकित बाल विकास, प्राथमिक शिक्षा, महिला शिक्षा, ग्रामीण जीवन, सामाजिक सुरक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य और महिला स्वास्थ्य। महिला सामख्या की पहली राष्ट्रीय परियोजना निदेशक (1988-1993) वर्तमान में एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट से संबंधित।

इलाकों के 88 प्रतिशत लड़के और 85 प्रतिशत लड़कियां स्कूल जाते हैं। इस आंकड़े में क्षेत्र, जाति, वर्ग, जनजाति के साथ शहरी-ग्रामीण और लैंगिक विभाजन की बड़ी विषमताओं को नहीं दर्शाया गया है। उदाहरण के तौर पर इस बात के पक्के सबूत हैं कि राजस्थान, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में विशेष ध्यान देने की जरूरत है। अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, असम जैसे उत्तर पूर्वी राज्य लंबे समय से उपेक्षित हैं।

सबके लिए शिक्षा : नीतिगत ढांचा

भारत सरकार ने 1950 के बाद जातिगत, समुदाय और लैंगिक आधार पर भेदभाव को मिटाने के लिए प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने की नीति बनाई। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं।²

- * स्कूल परिसर में बच्चों की देखभाल/क्रेच की सुविधा मुहैया कराने को नीति निर्धारण में महत्व दिया गया। इसके लिए 1975-76 में 33 ब्लॉकों में समेकित बाल विकास कार्यक्रम (आईसीडीएस) की शुरुआत की गई जो अब 5671 ब्लॉकों में 7 लाख पंचवर्षीय योजना³ के अंत तक इसमें 467 ब्लॉक (1,88,168 आंगनबाड़ी केंद्र) और जुड़ जाएंगे।
- * शिक्षा और कार्यक्रम पर कार्रवाई, 1986 की राष्ट्रीय नीति को अपनाने के बाद घर से नजदीक स्कूलों और दूरस्थ इलाकों में उपग्रह स्कूलों की सुविधा मुहैया कराई गई। इससे प्राथमिक स्तर पर 1950 के 1 करोड़ 92 लाख (50 लाख 40 हजार लड़कियां) की तुलना में 2004-2005⁴ में स्कूलों में दाखिले का स्तर 13 करोड़ 8 लाख (6 करोड़ 11 लाख लड़कियां) तक पहुंच गया। 1990 तक प्राथमिक स्तर के स्कूलों में 50.65 प्रतिशत, माध्यमिक स्कूलों में 38.43 प्रतिशत और उच्च माध्यमिक स्तर के स्कूलों में⁵ 85.74 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई। स्कूलों में वृद्धि में हुई इस शानदार सफलता के बावजूद बची में ही स्कूल छोड़ देने की बच्चों की प्रवृत्ति से हालांकि इसे झटका लगा। प्राथमिक स्तर पर 29 प्रतिशत 24.42 प्रतिशत लड़कियां) जिनमें से प्रारम्भिक स्तर पर 59.84 प्रतिशत (51.28 प्रतिशत लड़कियां और द्वितीयक स्तर पर 61.92 प्रतिशत (63.88 प्रतिशत लड़कियां)⁶ बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं।

- * उन बच्चों के लिए वैकल्पिक शिक्षा कार्यक्रम मुहैया करना जिन्होंने कभी दाखिल नहीं लिया। खासकर अल्पसंख्यक और विशेष समुदाय (शरणार्थी समूह आदि) के बच्चे।
 - * ग्रामीण इलाकों में ज्यादा महिला शिक्षकों की भर्ती जिन्हें सुरक्षित आवास भी दी जाए। साथ ही उन्हें दूसरों के साथ प्रशिक्षण (घर के पास) मुहैया कराना।
 - * शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार और शिक्षकों को इस बात के लिए प्रेरित करना कि पढ़ाई खुशनुमा माहौल में हो।
 - * दोपहर का भोजन, वर्दी, किताबें उपस्थिति स्कॉलरशिप और बस पास जैसी सुविधा मुहैया कराना।
 - * ग्रामीण शिक्षा समिति बनाकर स्कूलों का प्रबंधन करना। जिस समिति में कम से कम 50 फीसदी सदस्य महिलाएं हों।
 - * शैक्षिक योजनाओं और प्रशासन का विकेंद्रीकरण कर इसे जनता के नजदीक लाना ताकि यह उनकी विशेष जरूरत और समुदाय की आकांक्षा के रूप में प्रतिबिंबित हो।
 - * प्राथमिक शिक्षा और संपूर्ण साक्षरता पर आमतौर पर और महिलाओं की शिक्षा पर खास तौर लोगों की राय ली जाए। बृहत राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रशासनिक प्रतिबद्धता की वकालत की जाए।
 - * विशेष वर्गों खासकर लड़कियों और दूसरे विशेष समूहों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने के लिए विशिष्ट रणनीति तैयार करना। (सर्वशिक्षा अभियान 2002)।
 - * छह से चौदह साल के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया जाए (83वां संविधान संशोधन, 2002)।
2. इसे विमला रामचन्द्रन ने 1997 में अनुकूल बनाया।
 3. वार्षिक रिपोर्ट डीडब्ल्यूसीडी, एमएचआरडी, भारत सरकार, 2005।
 4. भारत सरकार, एसईएस, 2006
 5. एनसीईआरटी का छठा और सातवां शैक्षिक सर्वे।

- * शैक्षिक स्तर पर पिछड़े देश भर के ब्लॉकों में लड़कियों के लिए प्राथमिक स्तर पर राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीईजीईएल)।
- * सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों के बच्चों के लिए आवासीय शिक्षा और लड़कियों के लिए कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय की स्थापना। यह कार्यक्रम 2004 में देश भर के पिछड़े ब्लॉकों में शुरू किया गया।

तालिका 1

1951 से 2005 तक भारत की शिक्षा नीति

अवधि	नीति की रूपरेखा	केंद्र सरकार के कार्यक्रम और प्रस्ताव
1951-68	भारत का संविधान	स्कूली व्यवस्था का विस्तार। प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर।
1968-86	राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968	1976 : केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों पर शिक्षा को बढ़ावा देने और प्रबंधन की बराबर की जिम्मेदारी 1980 : औपचारिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनौपचारिक शिक्षा की शुरुआत। इसके लिए प्राथमिक स्कूलों में केंद्रीय सहायता में बढ़ोत्तरी
1986-92	राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ईएफए प्रोजेक्ट द्वारा सबके लिए शिक्षा - इनमें से ज्यादातर विदेशी दद से।	आंध्र प्रदेश प्राथमिक शिक्षा योजना, 1980 के शुरू में (ब्रिटिश ओडीए), पर्यावरण शिक्षा, 1986 (घरेलू साधनों से), राजस्थान शिक्षाकर्मि योजना, 1987 (एसआईडीए), सम्पूर्ण साक्षरता अभियान, 1988 (घरेलू संसाधनों से), कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और गुजरात में महिला समख्या, 1989 (हॉलैंड सरकार), बिहार शिक्षा योजना, 1991 (यूनिसेफ), राजस्थान लोक जुम्बिश, 1992 (एसआईडीए), उत्तर प्रदेश बुनियाद शिक्षा योजना, 1992 (विश्व बैंक)
1992-2002	राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संशोधन, दोपहर का भोजन, 1995 से 23001 में सुप्रीम कोर्ट	

द्वारा दोपहर का भोजन पर फैसला।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी), 1993 (डीएफआइडी इंडिया, विश्व बैंक, यूरोपीय संघ, यूनिसेफ और नीदरलैंड सरकार की सामूहिक सहायता से), प्राथमिक शिक्षा को पोषणता देने के लिए देने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (इसे मिड-डे मील योजना भी कहा जाता है)। 15 अगस्त 1995 को केंद्रीय सहायता से शुरू किया गया। इसका मकसद प्राथमिक शिक्षा को व्यापक बनाना था ताकि स्कूलों में बच्चों की संख्या बढ़े और उनकी उपस्थिति भी। साथ ही प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के पोषण पर भी इसका असर हो। प्राथमिक शिक्षा को और बढ़ावा देने के लिए 2001 में एक छतरी कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत की गई। नवम्बर 2001 में सुप्रीम कोर्ट ने सभी राज्य सरकारों को प्राथमिक स्कूलों में दोपहर का भोजन (मिड-डे मील) मुहैया कराने का आदेश दिया (आदेश 28 नवम्बर 2001)। 20 अप्रैल 2004 को दोबारा आदेश – जब इस बात की शिकायत मिली कि कुछ राज्य सरकारें ही पका हुआ भोजन बच्चों को मुहैया करा रही हैं और ज्यादातर उन्हें अनाज ही दे रहे हैं।

2002 के बाद

मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2004

छह से चौदह साल के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाना और इसे संविधान के भाग-III (मौलिक अधिकार) के रूप में जोड़ना।

2002 के बाद

2004 में मिड डे मील कार्यक्रम में संशोधन

देश भर के प्राथमिक स्कूलों के लिए मिड डे मील योजना।

केंद्र सरकार की ओर से संशोधित योजना मंजूर जिसका नाम प्राथमिक स्कूलों को पोषण सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम, 2004 (एनपीपीएसपीई) दिया गया। इसमें संशोधन का मकसद है। स्कूलों में ज्यादा से ज्यादा बच्चों का दाखला, उनकी उपस्थिति और उनमें पढ़ने की इच्छा जगाना खास कर जो पिछड़े समूह हैं ताकि प्राथमिक शिक्षा को व्यापक बनाया जा सके।

* प्राथमिक स्तर के बच्चों के पोषण स्तर को बढ़ाना।

* सूखा प्रभावित इलाकों में गर्मी की छुट्टियों में भी प्राथमिक स्तर के बच्चों को पोषण सहायता मिलती रहे।

शिक्षा की चुनौतियाँ

उपागमन और अवधारणा : उच्च और निम्न

- * 1991 से 2001 के बीच देश की साक्षरता में 13.17 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी देखी जो आजादी के बाद किसी भी दशक में सबसे ज्यादा है।
- * 1990 के बाद 1,52,304 नए प्राथमिक स्कूल और 1,10,830 उच्च प्राथमिक स्कूल खोले गए (भारत सरकार के शैक्षिक आंकड़े, 2006)।
- * पुरुषों की तुलना में महिलाओं में साक्षरता दर ज्यादा बढ़ी।
- * शहरी इलाकों में (7.2 प्रतिशत) की तुलना में ग्रामीण इलाकों में (14.75 प्रतिशत) में साक्षरता की दर में ज्यादा वृद्धि हुई। इस वृद्धि के बावजूद हालांकि शहरी इलाकों की साक्षरता 80.3 प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों की 59.4 प्रतिशत रही।
- * 1991 के 32.17 प्रतिशत की तुलना में महिलाओं में साक्षरता 2001 में 45.84 प्रतिशत रही जो 1981-91 के दशक के 7.35 प्रतिशत, 1971-81 के 6.13 प्रतिशत और 1961-71 के 5.74 प्रतिशत से कहीं ज्यादा 13.67 प्रतिशत की वृद्धि है।
- * इस दशक में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान में महिला साक्षरता में क्रमशः 24.87, 20.93 और 23.90 प्रतिशत की वृद्धि सुखद है।

इस दौरान देश में स्कूलों में दाखिला लेने की दर में अच्छी खासी वृद्धि दर्ज की गई जिससे स्कूल नहीं जानेवाले बच्चों की दर में कमी देखी गई।

प्रतिकूल प्रवृत्ति : मुस्लिम लड़कियां ज्यादा असुरक्षित⁷

लड़कियों को स्कूल नहीं भेजने की सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुसलमानों में दिखती है। भारत सरकार के सामाजिक और शोध संस्थान (एसआरआई) के अध्ययन के मुताबिक मुस्लिम लड़कियां (9.97 प्रतिशत) सबसे ज्यादा स्कूल छोड़ देती हैं। बिहार (24.34%), दमन दीव (28%), उत्तर प्रदेश (14.37%) और पश्चिम बंगाल (11.33%) में तो हालत राष्ट्रीय औसत से कहीं ज्यादा खराब हैं।

ग्रामीण इलाकों (12.03%) में तो मुस्लिम बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर दूसरे सभी समूहों से सबसे ज्यादा है। (6-13 साल के स्कूली बच्चों पर किए गए इस अध्ययन की रिपोर्ट एसआरआई ने 2005 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार को सौंपी। पेज 26-27)

1991 और 2001 की जनगणना में इस प्रवृत्ति के विश्लेषण में गड़बड़ी देखी।

- * भविष्य की शिक्षा नीति योजना⁸ के लिए सबसे ज्यादा असुरक्षित समूह मुस्लिम लड़कियां हैं।
- * राष्ट्रीय औसत की तुलना में मुस्लिम लड़कियों को दाखिला लेने की दर में अविश्वसनीय रूप से कमी आई। खास कर 1990 के दशक के दौरान और उसके बाद। सामाजिक विकास रिपोर्ट के परिषद में शरीफ और रज्जाक, भारत का सामाजिक विकास रिपोर्ट, ओयूपी, नई दिल्ली, 2006।
- * शरीफ और रज्जाक ने इस बात को उठाया कि शहरी इलाकों में गैर-मुस्लिम महिला और पुरुषों और मुस्लिम महिला और पुरुषों के बीच साक्षरता का अंतर काफी ज्यादा है। 1950, 1960, 1970 और 1980 के दशक में भी हिंदू महिलाओं की साक्षरता दर मुस्लिम महिलाओं से ज्यादा थी। साल 2001 के बाद भी युवा महिलाओं के बीच यह अंतर बढ़ती गई। (2001 की जनगणना के मुताबिक 64.5 प्रतिशत गैर-मुस्लिम पुरुषों की तुलना में 55 प्रतिशत मुस्लिम पुरुष ही साक्षर हैं। जबकि 41 प्रतिशत मुस्लिम महिलाएं और 46 प्रतिशत गैर-मुस्लिम महिलाएं साक्षर हैं।)
- * इसी तरह एनएसएसओ की हालिया रिपोर्ट (61वां चक्र 2004-05) में यह दर्शाया गया है कि अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के शहरी-ग्रामीण इलाकों के बच्चों में अंतर है।

6. भारत सरकार, एस्केएस, 2006

7. भारत के मुसलमानों की स्थिति का सम्पूर्ण विश्लेषण भारत सरकार, 2006. मुसलमानों की भारत की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति – एक रिपोर्ट।

8. भग और झिंगरण द्वारा 2002 में किए गए घरेलू सर्वे में यह बात सामने आई कि अनुसूचित जाति/जनजाति की तुलना में मुस्लिम बच्चों की स्थिति ज्यादा खराब है। मुस्लिम लड़कियों के मामले में तो यह बेहद दुखदायक है। जहां कुल मुस्लिम बच्चों के दाखिले का आंकड़ा 50.7 प्रतिशत है। वहीं अनुसूचित जाति का 67.3 आर अनुसूचित जनजाति का आंकड़ा 59.8 प्रतिशत है। निचली जाति के मुसलम बच्चों का आंकड़ा तो केवल 36 प्रतिशत है। कभी स्कूल नहीं जानेवाले बच्चों में तो निचली जाति के मुस्लिम बच्चों का आंकड़ा सबसे ज्यादा 32.6 प्रतिशत है। (भग और झिंगरण, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005)।

5-14 साल के स्कूल जानेवाले बच्चे – एनएसएस 61वां चक्र

प्रति एक हजार पर

ग्रामीण पुरुष ग्रामीण महिलाएं शहरी पुरुष शहरी महिला

कैबिनेट सचिवालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, नवम्बर 2006

तालिका 2 : भारत में स्कूलों, दाखिलों और शिक्षकों की वृद्धि का प्रतिशत

स्कूलों में वृद्धि का प्रतिशत	1986-93	1993- 2003
स्कूलों में वृद्धि का प्रतिशत	7.89	14.18
प्राथमिक	17.11	50.65
माध्यमिक	24.74	38.43
उच्च माध्यमिक	53.00	85.75
दाखिले में वृद्धि का प्रतिशत	1986-93	1993-2003
कक्षा 1-5	12.94	26.15
कक्षा 6-8	24.93	37.49
कक्षा 9-10	32.11	43.21
कक्षा 11-12	55.72	28.73
शिक्षकों में वृद्धि का प्रतिशत	1986-93	1993-2003
प्राथमिक	8.75	17.83
उच्च प्राथमिक	12.73	40.01
माध्यमिक	14.62	20.09
उच्च माध्यमिक	44.30	68.68

स्रोत : छठा अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वे, 1998 और सातवां अखिल शैक्षिक सर्वे, एनसीईआरटी, 2004

उच्च प्राथमिक स्कूलों (कक्षा 5/6 से कक्षा 7) तक पहुँच सुनिश्चित करना भारत सरकार के लिए सबसे चुनौती है। हाल के आंकड़ों के मुताबिक प्राथमिक से उच्च प्राथमिक स्कूलों और हाई स्कूलों में उच्च प्राथमिक कक्षाओं का

अनुपात देश भर के मात्र 2.57 हैं। फिर चौड़ी क्षेत्रीय असमानताएं भी हैं। शायद सबसे बुरा पश्चिम बंगाल (5.28) का है जहां प्राथमिक स्कूलों के पांच में से केवल एक बच्चे चौथी कक्षा से ऊपर जाने की उम्मीद कर सकते हैं।

तालिका 3 : 1950 से 2004 के बीच नामांकन (दस लाख में)

वर्ष	प्राथमिक	माध्यमिक
------	----------	----------

स्रोत : शैक्षिक आंकड़े, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार 2003-04, नई दिल्ली 2006

स्कूल बीच में छोड़ना : सच्चाई की पड़ताल

भारत में खराब गुणवत्ता और लगातार पक्षपात के कारण प्राथमिक शिक्षा की यह विशेषता रही है कि बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं और पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। प्राथमिक स्कूलों में 6-11 साल की उम्र के 90 फीसदी बच्चे नामांकन कराते हैं। (औपचारिक, शिक्षा गारंटी योजना/वैकल्पिक और निजी स्कूलों में)। इनमें से 40 फीसदी बच्चे प्राथमिक स्तर पर ही स्कूल छोड़ देते हैं। (शैक्षिक आंकड़े, भारत सरकार 2006)।

गरीब और सामाजिक रूप से पिछड़ों में स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति ज्यादा—

ऊपर की तालिका 3 में दिए गए आंकड़ों से यह साफ है कि उच्च प्राथमिक स्कूलों में नामांकन कराने वाले बच्चों में कमी होती है और माध्यमिक स्तर पर यह और नीचे गिर जाता है। यह स्थिति शहरी और ग्रामीण गरीबों और सामाजिक रूप से पिछड़े समूहों में सबसे खराब है। खासकर अनुसूचित जाति और जनजाति में। दूसरे समूहों के बच्चों की तुलना में अनुसूचित जाति के बच्चों की संख्या स्कूल बीच में ही छोड़ देने के मामले में सबसे ज्यादा है।

2003-04 में 2 करोड़ 31 लाख 20 हजार (एक करोड़ तीन लाख साठ हजार लड़कियां) अनुसूचित जाति के बच्चे ही प्राथमिक स्कूलों में और 80 लाख 70 हजार बच्चे (33 लाख 40 हजार) माध्यमिक स्कूलों में पढ़ रहे थे। लेकिन मजेदार तथ्य है कि हर स्तर पर लड़कियों के नामांकन दर में वृद्धि देखी गई। प्राथमिक स्तर पर दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति के बच्चों में 45 प्रतिशत लड़कियां थीं। यही प्रवृत्ति अनुसूचित जनजाति के बच्चों में भी देखने को मिली।

लेकिन अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों का यह अनुपात अभी भी राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है। अनुसूचित जाति की 48.6 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की 40.6 प्रतिशत लड़कियां ही प्राथमिक स्तर पर दाखिला ले पाती हैं। जबकि लड़कियों का राष्ट्रीय औसत 56.22 प्रतिशत है।

तालिका 4 : अनुसूचित जाति के बच्चों का 1980 से 2004 तक का नामांकन (हजार में)

स्रोत : शैक्षिक आंकड़े, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन और विकास मंत्रालय, भारत सरकार 2005

तालिका 5 : 1980 से 2003 तक अनुसूचित जनजाति के बच्चों का नामांकन (हजार में)

स्रोत : शैक्षिक आंकड़े, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन और विकास मंत्रालय, भारत सरकार 2005

स्कूल छोड़ने की दर में न्यूनतम बदलाव

यह चिंता की बात रही है कि स्कूल बीच में छोड़ने वाले बच्चों की दर में मामूली बदलाव ही आया है। पिछले दो तीन सालों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लड़कों (कक्षा 1 से 8 तक) के स्कूल छोड़ने की दर में वृद्धि हुई है। हर वर्ग में लड़कियों की स्थिति लड़कों की तुलना में खराब है। (सवर्ण जातियों और आर्थिक रूप से सम्पन्न तबकों की लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर भी लड़कों से कहीं ज्यादा है।)

सामाजिक समूह और लिंग आधार पर स्कूल छोड़ने की दर (प्राथमिक)

छोड़ने वालों का प्रतिशत

सामाजिक समूह और लिंग

स्रोत : शैक्षिक आंकड़े, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन और विकास मंत्रालय, भारत सरकार 2005

सवर्ण जातियों/समुदायों की तुलना में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के ज्यादा बच्चे स्कूल छोड़ते हैं। यह दुखद है कि सौ में 71 जनजाति लड़कियों प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाती हैं। सरकारी आंकड़ें तो संदेह पैदा करते हैं। लेकिन एक स्वतंत्र सर्वे, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (1998-99) की रिपोर्ट में भी कहा गया है कि 6-14 साल के बच्चों की स्कूल में उपस्थिति (72.7 प्रतिशत लड़कियां, 83.1 प्रतिशत लड़के) बढ़ी है। हालांकि इनमें से केवल 34.2 प्रतिशत लड़कियां और 53.3 प्रतिशत लड़के (सर्वे में शामिल बच्चे) ही प्राथमिक शिक्षा पूरी कर पाते हैं।

व्यापक दृष्टि से बाहर : राज्यों के बीच संकटपूर्ण अंतर

इन प्रवृत्तियों से अंतरराज्यीय अंतर का महत्वपूर्ण तथ्य छुप जाता है। कुल मिला कर प्राथमिक शिक्षा (कुछ राज्यों में पांचवी पास और कुछ में चौथी पास) पूरी करने वाले बच्चों में कर्नाटक के 78 प्रतिशत, महाराष्ट्र 62 और तमिलनाडु के 55 प्रतिशत बच्चे हैं। जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में 40 प्रतिशत से भी कम बच्चे ऐसा कर पाते हैं।

कुछ अध्ययनों (यश अग्रवाल 2000, 2001, गोपीनाथ नायर 2001, झग और झिंगरण, विमला रामचंद्रन 2003) में पाया गया है कि कभी नामांकन नहीं कराने वाले बच्चों का अनुपात तेजी से गिरा है। सही तरीके से काम नहीं करने वाले स्कूलों की खराब गुणवत्ता भी बच्चों के स्कूल छोड़ने के कारक हैं।

निष्पक्षता की तलाश : लैंगिक और सामाजिक भेदभाव को हटाना

अगर अलग-अलग समूहों, लिंग और जाति समूहों के साक्षरता दर को एक साथ जोड़कर देखा जाए तो साक्षरता में बढ़ोत्तरी और विषमता की कमी होगी। शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्र से ज्यादा सामाजिक और लैंगिक असमानता है। 2001 में यह अनुमान लगाया गया था कि 6-14 साल के 4.4 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते जो इस उम्र समूह के कुल जनसंख्या का 28.5 प्रतिशत था। सरकार के मुताबिक पिछले 16 सालों में स्थिति में तेजी से सुधार हुआ है। एसआरईआईएमआरबी की ओर से 2005 में किए गए राष्ट्रीय सर्वे में यह अनुमान लगाया गया कि 6-14 साल के करीब 1.34 करोड़ बच्चे स्कूल का

रुख नहीं करते हैं।

एएसईआर 2005 की रिपोर्ट के मुताबिक कमोबेश इस आंकड़े की पुष्टि होती है। लेकिन सही आंकड़े अभी भी चिंतित करने वाले हैं। बिहार (31.76 लाख), उत्तर प्रदेश (29.95 लाख), पश्चिम बंगाल (12.13 लाख), मध्य प्रदेश (10.85 लाख) और राजस्थान (7.95 लाख) में अभी भी सबसे ज्यादा संख्या में बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं।

जिन्होंने स्कूलों में कभी नामांकन नहीं कराया स्कूल नहीं जाने वाले ऐसे बच्चों के अलग-अलग आंकड़े विषमता को प्रदर्शित करते हैं। जैसे की कामकाजी बच्चे, शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले, दूर-दराज इलाके में रहने वाले, अनुसूचित जाति/जनजाति और खानाबदोशों का समूह। इन सभी वर्गों में लड़कियों का अनुपात ऊँचा है।

शिक्षा गारंटी योजना और स्कूल : पहुँच का नया क्रम

एक नई प्रवृत्ति जिसे कम स्वीकृति मिली है वह है स्कूलों की विविधता का सहअस्तित्व-सरकारी प्राथमिक स्कूल, शिक्षा गारंटी योजना (EGS), वैकल्पिक और निजी (मान्यता प्राप्त और बिना मान्यता के)। हाल के शोध से पहुँच के नए क्रम का आर्विभाव प्रदर्शित होता है। कम भाग्यशाली, खासकर लड़कियां और सामाजिक रूप से हाशिए पर रहनेवाले इन विशिष्ट स्कूलों – प्रायः शिक्षा गारंटी योजना, वैकल्पिक और सरकारी प्राथमिक स्कूलों में झुंड बनाकर कर आते हैं। उच्च तबके छात्र तेजी से निजी स्कूलों में चले जाते हैं।

शिक्षा गारंटी योजना स्कूलों की तेजी से वृद्धि (सरकार द्वारा) ने शिक्षा में दोहरानपन की पुरानी बहस को फिर से उजागर करद दिया है। एक तरफ आर्थिक दबाव औपचारिक सरकारी स्कूलों के विस्तार और शिक्षकों की नियुक्ति में बाधाक है। नए पारा-स्कूल कुछ स्कूलिंग मुहैया कराते हैं। लेकिन साथ ही साथ शिक्षा के इस लोकतंत्रीकरण से उन तबकों के लोग पीछे ढकेल दिए जाते हैं जिन्हें ज्यादा ध्यान की आवश्यकता है। शिक्षा के दूसरे दर्जे का उन्हें संसाधन नसीब हो पाता है। ऐसे में बच्चों में समजा की नकारात्मक छाप ज्यादा गहराई से अंकित हो जाती है।

शिक्षा के सामाजिक बंधन : कड़वी हकीकत

सफाई का काम करने वाले (झाड़ूदार) समुदायों, मरे जानवरों को ठिकाने लगाने

वालों और इसी तरह दूसरे काम करने वाले लोगों के बच्चों से स्कूल में दूसरे बच्चे दूर ही रहते हैं। यहां तक कि उनकी दुर्दशा के प्रति शिक्षकों की भी ज्यादा सहानुभूति नहीं होती है। व्यापक आंकड़ों या बड़े पैमाने पर होने वाले अध्ययनों में इस तरह के मसलों को नहीं शामिल किया जाता है। हाल में छह राज्यों में हुए व्यापक अध्ययन में स्कूलों में जारी इस तरह के भेदभाव और इससे विशेष सामाजिक समुदाय के बच्चों पर पड़ने वाले असर को शामिल किया गया है। (विमल रामचंद्रन, ईडी, 2004)

कुपोषण और भूख : विचार के लिए सामग्री नहीं विश्व बाल रिपोर्ट (2007) में पूरे देश के बच्चों की पोषण स्थिति को दर्शाया गया है। इसमें कहा गया है कि तीन साल से कम उम्र के 38 प्रतिशत बच्चे अविकसित (अपनी उम्र से छोटे) हैं, 19 प्रतिशत दुर्बल (अपनी लंबाई की तुलना में ज्यादा पतले) और 46 प्रतिशत बच्चों का वजन कम (उम्र के हिसाब से कम) है। आईसीडीएस कार्यक्रम और मिड-डे मील योजना के बावजूद यह तथ्य भारतीय बच्चों की पोषण स्थिति के लिए खतरनाक है।⁹

खराब स्वास्थ्य और घरेलू कामकाज की छाया

पिछले सात सालों में हुए व्यापक अध्ययन में यह बात सामने आई है कि देश के कई इलाकों में चार से पांच साल तक आए भयंकर सूखे से कुछ समय के लिए स्थायी भूख ने बच्चों को मुरझा दिया। यह महत्वपूर्ण समला है। (विमला रामचंद्रन, ईडी 2003 - हेरारकी ऑफ एक्सेस, सेज पब्लिकेशन) खराब स्वास्थ्य और लगातार बीमारी की वजह से स्कूलों में नियमित उपस्थिति में गिरावट आई। स्वास्थ्य और शिक्षा के बीच अभी भी संबंध हैं खास कर उन इलाकों के बच्चों में जहां गरीबों की आबादी ज्यादा है। इससे यह सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि बच्चे कितने आगे बढ़ेंगे खासकर शिक्षा के पहले पायदान पर जब स्कूल जाने से पहले और उसके बाद उन पर खराब स्वास्थ्य और घरेलू कामकाज का दबाव होगा।¹⁰

गरीब राज्यों में मिड-डे मील एक तमाशा

स्कूली बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार के लिए सुप्रीम कोर्ट ने पका हुआ भोजन दोपहर में स्कूलों में बांटने का राज्य सरकारों को आदेश (28 नवम्बर,

9. (स्रोत : <http://www.nfhsindia.org/summary.html.march2007>)

10. सांप और सीढ़ी विमला रामचंद्रन, 2004

2001 को) दिया। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के मुताबिक 35 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से 23 ने बच्चों को दोपहर में पका हुआ भोजन देना शुरू कर दिया। मौजूदा समय में 29 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के 5 करोड़ 80 लाख बच्चों (6-11 साल की उम्र के करीब 55 प्रतिशत बच्चे) को दोपहर का भोजन मिल रहा है। केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय की सालाना रिपोर्ट के मुताबिक 2003-04 में इस योजना के तहत करीब 10 करोड़ 60 लाख बच्चों को शामिल किया गया। (आर गोविंदा और के बिस्वाल 2006)। विडम्बना यह है कि जिन राज्यों में मिड-डे मील योजना पर अमल नहीं हुआ वहां के उन इलाकों में भी बाद में इसे शुरू नहीं किया गया जहां कुपोषण की स्थिति ज्यादा भयावह है।

शिक्षा की गुणवत्ता :

लंबे समय तक प्राथमिक शिक्षा के अच्छे प्रदर्शन में स्कूलों और शिक्षकों की कमी, गरीबी, मां-बाप का बच्चों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देना, सामाजिक बंधान और सामाजिक बंधन और सामाजिक रीति रिवाज आड़े आती रही है। जैसा कि पहले कहा गया है कि इन मामलों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। हाल के शोध में इस बात का संकेत मिला है कि पढ़ाई अधूरी छोड़ने और बच्चों के स्कूल नहीं जाने का महत्वपूर्ण कारक यह भी है कि स्कूलों की बुनियादी और शैक्षणिक स्थिति ठीक नहीं है। शिक्षा और उसकी गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

प्राथमिक स्कूल : कैसा है और कैसा होना चाहिए

सरकारी नीति के मुताबिक प्राथमिक स्कूल में दो कमरे, दो शिक्षक और जनता व शिक्षक का अनुपात 40:1 होना चाहिए। साथ ही यह ऐसी जगह पर होना चाहिए कि बच्चे अपने घर से पैदल कर यहां तक पहुंच सकें। लेकिन हकीकत इससे बिल्कुल अलग है।

* प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों में वृद्धि के बावजूद स्कूल भवनों के निर्माण की सालाना दर करीब एक प्रतिशत है जो जनसंख्या वृद्धि दर से काफी कम है।

* भारत सरकार द्वारा 1999 में गठित तपस मजूमदार समिति ने कहा था कि चार लाख स्कूलों की तत्काल जरूरत है।

* शिक्षकों की कमी से कुछ राज्यों में शिक्षक-जनता का अनुपात 1:80 तक पहुंच गया है जिससे शिक्षकों और उनको पढ़ाने की गुणवत्ता पर अनावश्यक दबाव पड़ता है।

एकल शिक्षक स्कूलों, बहुवर्गीय कक्षाओं, पढ़ाई के साधनों की खराब गुणवत्ता और शिक्षकों के प्रशिक्षण का स्थायी अभाव स्कूलों के वातावरण के प्रबंधन में समुदायों को शामिल होने से पीछे हटाता है।

तालिका 7 : शिक्षक - नागरिका अनुपात

वर्ष प्राथमिक उच्च प्राथमिक उच्च/उच्च माध्यमिक

शिक्षा प्राप्ति में लैंगिक विभाजन सार्थक नहीं :

जिला शिक्षा सूचना व्यवस्था (डीआईएसई) के हाल के आंकड़ों के मुताबिक चौथी/पांचवी कक्षा में 60 प्रतिशत या इससे अधिक अंकों से पास होने वालों में 47.83 प्रतिशत लड़के और 48.50 प्रतिशत लड़कियां हैं। एनसीईआरटी की ओर से प्रायोजित इसी तरह के एक और अध्ययन में यह बात सामने आई है कि सीखने के मामले में कोई लैंगिक अंतर¹¹ नहीं है। यह सरकार की महत्वपूर्ण गुणवत्ता को इंगित करती है। हालांकि इस तरह का आंकड़ा कक्षा 7 एवं 8 तक के पूरे बच्चों का नहीं है।

सीखने का स्तर

सीखने के मामले में लैंगिक विभाजन असली मुद्दा नहीं है लेकिन इसके स्तर को लेकर है जो काफी कम है। 7-14 साल के 35 प्रतिशत बच्चे कक्षा I का उद्घरण नहीं पढ़ सकते और 52 प्रतिशत बच्चे कक्षा I के आसान पैराग्राफ को नहीं पढ़ सकते। कहने का मतलब यह है कि जब कोई व्यक्ति डूबने लगता है तो उसके लिए यह मायने नहीं रखता है कि पानी 35 फुट गहरा या 55 फुट।

शिक्षा की सालाना स्थिति रिपोर्ट (एनुअल स्टेटस एजुकेशन रिपोर्ट (एएसईआर 2006) में बच्चों के सीखने के स्तर में काफी अंतर नहीं है। (नीचे तालिका देखें।) यह महत्वपूर्ण है कि अगर लड़कियों को एक बार स्कूलों में दाखिला

11. एनसीईआरटी ने 27 राज्यों और तीन केंद्र शासित प्रदेशों (झारखंड और मेघालय सहित) के 105 जिलों के 4787 स्कूलों के कक्षा 5 के 88,271 बच्चों की लिखित परीक्षा ली। इसका नतीजा एसईआर 2005 के समान ही रहा है और किसी तरह का लैंगिक विभाजन देखने में नहीं आया।

मिल जाए और वो लगातार स्कूल जाने लगे तो उनके सीखने की क्षमता लड़कों से थोड़ी ही कम रहती है।

फर्रटिदार कहानी पढ़ाने वाली एएसईआर 2006

अंडमान और निकोबार	उड़ीसा	हरियाणा
पांडिचेरी	झारखंड	उत्तरांचल
तमिलनाडु	पश्चिम बंगाल	पंजाब
केरल	असम	हिमाचल प्रदेश
गोवा	मेघालय	जम्मू और कश्मीर
कर्नाटक	त्रिपुरा	
आंध्र प्रदेश	मिजोरम	
महाराष्ट्र	मणिपुर	
दादरा और नगर हवेली	नागालैंड	
दमन और दवी	अरुणाचल प्रदेश	
गुजरात	बिहार	
मध्य प्रदेश	उत्तर प्रदेश	
छत्तीसगढ़	राजस्थान	

कहानी पढ़ने वालों का प्रतिशत

आगे की कड़ी :

कई कारक यह तय करते हैं कि बच्चे कब तक पढ़ाई जारी रखेंगे या छोड़ देंगे। कब तक और कितना वे सीखेंगे और कब तक उनमें शैक्षिक क्षमता या इच्छा जागृत होगी। गरीबी, विस्थापन, दूसरे आर्थिक कारण और लैंगिक भूमिका के कारण जब तक बच्चे स्कूल छोड़ते रहेंगे तब तक मौजूदा योजनाओं के माध्यम से उन्हें वापस स्कूल नहीं लाया जा सकेगा। वे फिर से स्कूली व्यवस्था में दाखिला ले सकते हैं।

स्कूल छोड़ने का परिवार/समुदाय पर नकारात्मक प्रभाव

अनुभव यह दर्शाता है कि जो युवा बचपन में प्राथमिक शिक्षा पूरी कर सकते थे लेकिन नहीं कर पाए वे परिवार और समुदाय के छोटे बच्चों के लिए निरुत्साहन का काम करते हैं। खास कर जब शिक्षा से उन्हें रोजगार/स्वरोजगार

का कोई लाभ नहीं मिलता या सामाजिक रूप से कोई अतिरिक्त पहचान नहीं बनती। साक्षर युवाओं द्वारा समाज में अशांति फैलाना और किशारों में अपराध की प्रवृत्ति बढ़ने का नकारात्मक असर युवाओं और शिक्षा (शिरोवय पर योजना आयोग का कार्य समूह, भारत सरकार, 2001) दोनों पर पड़ता है।

बुनियादी शिक्षा को पुनर्जीवित करने के लिए अब वैश्विक स्तर पर मान्यता मिल चुकी है। हम इन चीजों पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है :-

- * शिक्षा के लिए केवल पैठ बनाने की जगह गुणवत्ता वाली शिक्षा में पैठ बनाने की ओर मुड़ना होगा।

- * प्राथमिक से उच्च प्राथमिक, माध्यमिक से हाई स्कूल और उच्चतर से तकनीकी (व्यवसायिक सहित) शिक्षा की ओर बढ़ना होगा।

- * आठवीं पास करने के बाद बच्चों के लिए व्यवसायिक शिक्षा, क्षमता और जीवन जीने के लिए साधनों का प्रशिक्षण देने और स्कूल छोड़ चुके बच्चों के लिए शैक्षिक स्तर को विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए बढ़ाने की जरूरत है।

अगर ज्यादातर बच्चे 10 या 12 सालों तक स्कूल जाने लायक होते हैं तो उच्च शिक्षा (व्यवसायिक प्रशिक्षण सहित) के मौजूदा संस्थान निश्चय ही पहुँच में होने चाहिए। जबकि तकनीकी और उच्च शिक्षा पर सरकार की ओर से दिए जाने वाले अनुदान में पिछले पांच सालों में कटौती होती रही है। अच्छे संस्थानों की संख्या अब कम हो चुकी है।

विशेष समूह : बाहरी

कामकाजी बच्चे, विशेष जरूरत वाले बच्चे, और किशोरियों का विशेष समूह स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों में सर्वाधिक है जो बड़ी चुनौती है।

बाल मजदूर और अनुपस्थिति में संबध

यह तर्क दिया जाता है कि बच्चे स्कूल इसलिए नहीं जाते क्योंकि उनके परिवार को उनकी मजदूरी से आमदनी होती है। या फिर घर में उनकी मौजूदरगी, खासकर लड़कियों की, जरूरी होती है ताकि उनके मां-बाप और बड़े भाई-बहन मजदूरी करने जा सकें। लेकिन हाल के अध्ययनों में यह बात सामने आई है कि स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों में से ज्यादातर बच्चे न तो स्कूल होते हैं और न ही काम में सक्रिय (विमला रामचंद्रन 2004, स्नेक्स एंड लैडर्न्स, वर्ल्ड बैंक, नई दिल्ली)।

बच्चों से दुर्व्यवहार (डब्ल्यूसीडी, भारत सरकार 2007) पर भारत सरकार की हाल की रपट में यह कहा गया है कि वास्तविक स्थिति काफी जटिल है। ज्यादातर कामकाजी बच्चे 12 साल से अधिक उम्र के हैं। जबकि असंगठित क्षेत्र (चाय की दुकान, गैराज, ढाबा) में ज्यादातर कामकाजी बच्चे लड़के हैं। और घरेलू काम करने में लड़कियों की संख्या ज्यादा है। बीड़ी बनाने के क्षेत्र में 83 प्रतिशत लड़कियां हैं।

महत्वपूर्ण यह है कि जब वे काम करते हैं तो उनके कार्योंत्पादन पर बाल मजदूर से अनुपस्थिति होने की जरूरत नहीं पड़ती है। ये वे बच्चे हैं जिसे स्कूल से बाहर हैं और गैर पेशेवर हैं। यहां तक कि जब बच्चों की कमाई की परिवार को जरूरत होती है तो वे ये काम करते हैं। स्कूल जाने वाले कई बच्चे स्कूल जाने से पहले और स्कूल से आने के बाद काम करते हैं।
तालिका 10 : स्कूल से पहले और बाद में बच्चों का काम (6 से 11 साल तक के)

लड़का बच्चे क्या करते हैं लड़की

हमेशा कभी-कभी कभी-कभार कभी नहीं

उत्तर प्रदेश	कर्नाटक	आंध्र प्रदेश	उ.प्र.	कर्नाटक	आंध्र प्रदेश
--------------	---------	--------------	--------	---------	--------------

स्कूल जाने से पहले

झाड़ू, घर की सफाई

कपड़े और बर्तन धोना

खाना बनाना

पानी भरना

चारा इकट्ठा करना, जानवरों को खिलाना

स्कूल से आने के बाद

चारा/लकड़ी इकट्ठा करना

घरेलू मजदूर (शहरी झुग्गी)

गोबर जमा करना

पानी भरना
जानवरों को खिलाना
मवेशियों और बकरियों को चराना
खेतों में काम करना
भागदौड़
खाना बनाना
भाई-बहन की देखभाल
बर्तन धोना
छुट्टियों में काम करना
कर्ज चुकाने के लिए थोड़े समय काम करना
खेलने में समय बिताना
टीवी देखना (शहरी इलाकों)
टोकरीन बनाना, बीड़ी बनाना/दूसरे काम
स्रोत : विमला रामचन्द्रन ईटीएएल, 2004

दुर्भाग्यवश शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग विशेष जरूरत वाले बच्चों का आंकड़ा अभी भी अपर्याप्त है। जबकि पिछले तीन सालों में डीपीईपी जिलों में इन बच्चों के लिए खास स्कूल खोलने और इन्हें आम स्कूलों से जोड़ने के लिए रास्ता तैयार करने का काम किया गया।

किशोरवय के एक तिहाई से भी कम बच्चे स्कूलों में

किशोरावस्था (11-17 साल) के एक-तिहाई से भी कम बच्चे स्कूल (एनएफएचएस-3, 2004) जाते हैं। यह स्थिति एनएफएचएस-2 (1998) के बाद से ज्यादा नहीं बदली है। लड़कियों के स्कूल छोड़ने पर आमतौर पर कारण उनकी शादी होना है। जिनमें से आधे के पास न्यूनतम साक्षरता क्षमता होती है। अभी भी इन वर्गों पर खास ध्यान नहीं दिया जाता है।

ज्यादा चिंता की बात यह है कि परम्परागत मीडिया किशोरावस्था के लड़कों का चित्रण हिंसक, अशांति फैलाने वाले, वासनात्मक, नशेड़ी और एचआईवी/एड्स

से पीड़ित के रूप में ज्यादा करता है। जबकि योजना आयोग का मानना है कि किशोरवय के लड़कों और लड़कियों की शिक्षा और विकास पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। बदलाव और पुनर्निर्माण को ये महत्वपूर्ण ताकत है। इन्हें विकास में शामिल करना चाहिए।

मगर जमीनी हकीकत यही है कि उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, लैंगिकता, जिंदगी, क्षमता और नेतृत्व विकसित करने के बारे में कोई परिपक्व कार्यक्रम नहीं है। किशोरवय पर योजना आयोग का कार्य समूह, भारत सरकार 2001)

मुफ्त शिक्षा कहीं नहीं

क्यों कुछ बच्चे स्कूल नहीं जाते? विभिन्न अध्ययनों में यह माना गया है कि शिक्षकों की अकर्मण्यता, उनकी अनुपस्थिति, खराब बुनियादी सुविधाएँ, अप्रासंगिक पाठ्यक्रम और प्रेरित नहीं करने वाला वातावरण बच्चों के स्कूल नहीं जाने के लिए जिम्मेदार कारक है। ड्रेज और गज्जर 1996, पीआरओबीई 1999)। उन्होंने दर्शाया कि परिवार की कम आय/गरीबी और स्कूल जाने के बीच संबंध है। इस आर्थिक आयाम को नकारा नहीं जा सकता है।

बच्चों को स्कूल भेजने में खर्च तो आता ही है। तमाम दावों के बावजूद यहां तक कि सरकारी प्राथमिक स्कूलों में भी शिक्षा मुफ्त नहीं है। परिवार वालों को प्रति बच्चा कम से कम 350 रुपया सालाना, यूनिफार्म, स्टेशनरी, आने-जाने पर खर्च करना ही पड़ता है। अगर ट्यूशन को जोड़ दिया जाए तो वह अलग है। यह गरीब परिवार के लिए कम नहीं है। (पीआरओबीई, 1999 और एनसीईआर 1994, दीपा शंकर 2003)।

तालिका 9 : प्रत्येक बच्चे की शिक्षा पर सालाना घरेलू खर्च

	प्राथमिक	मिडिल	माध्यमिक	उच्च माध्यमिक	तृतीयक
सरकारी स्कूल	328	709	1156	1978	2672
स्थानीय निकाय	447	796	1216	2198	3404
वित्तीय सहायता प्राप्त निजी स्कूल		1330	1449	1654	2623
3463					
वित्त रहित निजी स्कूल	1642	2193	2766	3591	4024
कुल	622	978	1395	2328	3078

स्रोत : एनएसएस, 52वां दौर (दीपा शंकर, 2003)

असितत्व की अनिश्चितता, इसलिए स्कूल ज्यादा जरूरी

हाल के कुछ अध्ययनों में यह बात सामने (विश्व बैंक 1996, विमला रामचंद्रन 2003 और 2004) है कि जो बच्चे स्कूल बीच में ही छोड़ देते हैं उनमें अनिश्चितता के कारण जीवन के प्रति अभिलाषा में कमी रह जाती है। वे अपनी क्षमता का सामना स्कूल जाना जारी रखकर ही करते हैं। यहां तक कि स्कूल छोड़ने वाले बच्चे कुछ कामों में लग जाते हैं, जैसे कि घरेलू या बाहरी और यह काम स्कूल जाने में कम ही सहायक होते हैं।

जबकि मुफ्त किताबें, बैग और यूनिफार्म के प्रोत्साहन ने काफी बड़ा बदलाव लाया है। हाल के सबूतों से प्रदर्शित होता है कि मिड-डे मील के प्रावधान में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है (ज्यां ट्रेज, व्यक्तिगत संचार 2004)। यह नहीं है कि गरीब मां-बाप अपने बच्चों को शिक्षित करना नहीं चाहते। उन्हें ऐसा करने में इसलिए दिक्कत होती है कि वे खुद को शुरूआती आय के स्तर से भी नीचे पाते हैं।

हिंसा, दुर्व्यवहार और शारीरिक सजा

‘भारत में बच्चों से दुर्व्यवहार’ पर केन्द्रीय महिला व बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट में जो तथ्य शामिल कए गए हैं वह काफी चौंकाने वाले हैं। स्कूल जाने वाले 3,163 बच्चों से साक्षात्कार के आधार पर इस रिपोर्ट को तैयार किया गया है।

- * प्रत्येक तीन में से दो बच्चों के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार हुआ।
- * 13 राज्यों से लिए गए नमूनों में शारीरिक दुर्व्यवहार वाले 69% बच्चों में 54.68 प्रतिशत लड़के थे।
- * पारिवारिक स्थिति में जिन बच्चों के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार हुआ उनमें से 88.6% बच्चों के पास उनके ही मां-बाप ने शारीरिक दुर्व्यवहार किया।
- * स्कूल जानेवाले तीन में से दो बच्चों ने शारीरिक यातना दिए जाने की बात कही।
- * 62% शारीरिक सजा सरकारी और नगर पालिका के स्कूलों में दिया गया।
- * ज्यादातर बच्चे इसकी शिकायत किसी से नहीं करते।

- * 50.2 प्रतिशत बच्चे सप्ताह के सात दिन काम करते रहे।
- * लड़कियों से शारीरिक दुर्व्यवहार का अनुपात सबसे ज्यादा केरलव (55.61%) और गुजरात (54.61%) में था।
- * लड़कों से दुर्व्यवहार की सबसे ज्यादा रपट दिल्ली (62.2%), इसके बाद मध्य प्रदेश (59.75%) और महाराष्ट्र (55.75%) से मिली।

शिक्षा पर खर्च¹²

1990 तक यह आमतौर पर माना जाता था कि आर्थिक संसाधनों की कमी भारत की खराब शैक्षिक उपलब्धि की एक बड़ी वजह है। पिछले 15 सालों में भारत की बढ़ती अर्थव्यवस्था से इस बात पर जोरदार वकालत होने लगी कि शिक्षा के मुश्किल क्षेत्रों में संसाधनों के आवंटन में वृद्धि हो।

यह सब राजनीतिक इच्छाशक्ति से होती है। आठवीं पंचवर्षीय योजना की जब घोषणा हुई थी तो यह घोषित किया गया था कि शिक्षा पर जीडीपी का 4.9% निवेश किया जाएगा। विडम्बना यह है कि शिक्षा पर निवेश का जीडीपी का प्रतिशत घटता (नीचे की तालिका देखें) गया। 11वीं पंचवर्षीय योजना में जो जीडीपी के 6% का लक्ष्य रखा गया है उसे पाने के लिए शायद बड़ी राजनीतिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता है।

भारत में शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च

वर्ष	शिक्षा पर खर्च (केंद्र और राज्य) रु. करोड़ में)	सभी क्षेत्रों में सरकार का खर्च (रुपये करोड़ में)	मौजूदा दर पर जीडीपी आधार वर्ष 1993-94 (रु. करोड़ में)	सभी क्षेत्रों लिए गए खर्च का शिक्षा पर खर्च का %	शिक्षा पर जीडीपी का % खर्च
------	---	--	---	---	----------------------------------

1999-2000

* अस्थायी, स्रोत : भारत सरकार, एसईएस, 2006

1990 के जोमटेन सम्मेलन में स्पष्ट रूप से प्राथमिक शिक्षा के पक्ष में आवाज उठी (नीचे तालिका देखें)। जैसा कि डॉ. आर. गोविंद और के. बिस्वाल ने इस मुद्दे को रेखांकित किया, 1999-2002 से केंद्र और राज्यों केंद्र शासित

12. पत्र का यह खंड आर. गोविंद और के बिस्वाल 2006 के लेखन पर आधारित है। लेखक दिए गए तर्क एवं आंकड़ों के स्रोत के रूप में मशहूर हैं।

प्रदेशों ने मिलकर प्राथमिक शिक्षा पर खर्च के हिस्से में 4% से थोड़ा ज्यादा वृद्धि की। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ केंद्र प्रायोजित योजनाएं (सीएसएस) लागू की गईं जो राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम का विस्तार था। लेकिन संसाधनों के इस्तेमाल की पहल राज्य सरकारों के साथ थी।

जिला प्राथमिक शिक्षा योजना के साथ इस प्रवृत्ति में थोड़ा बदलाव आया। भारत से धन को राज्य कार्यान्वयन संस्था को दिया गया जिसकी सभी राज्यों में स्थापना की गई। जिला प्राथमिक शिक्षा योजना की गतिविधि को अमल में लाने के लिए राज्य सरकारों को कुल खर्च का 15% देने की आवश्यकता थी।

गोविंदा और बिस्वाल ने इस मुद्दे को उठाया कि केंद्र सरकार की प्राथमिक शिक्षा योजना सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) को नौवीं पंचवर्षीय योजना में इसी आधार पर जारी रखा जाए। हालांकि दसवीं पंचवर्षीय योजना में केंद्र सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान को दिए जाने वाली 85 प्रतिशत राशियात की साहयता को घटाकर 75 प्रतिशत कर दिया। ऐसे में आठवीं पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा के विकास के केंद्र और राज्य के बीच धीरे-धीरे सहभागिता बढ़ती गई।

वर्ष प्राथमिक शिक्षा पर खर्च (करोड़ में) जीडीपी में प्राथमिक का %
जीडीपी में माध्यमिक/उच्चतर मा. का % जीडीपी में वयस्क शिक्षा का %
जीडीपी में विवि. और उच्च का %

सर्वशिक्षा अभियान में राज्यों की भागीदारी बढ़ाना ज्यादा फायदेमंद नहीं हो सकता

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक केंद्र सरकार सर्व शिक्षा अभियान में राज्यों की हिस्सेदारी 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत करना चाहती है। विभिन्न राज्यों की अनियमित वित्तीय स्थिति और सभी राज्यों की प्राथमिकता में बुनियादी शिक्षा के नहीं होने से यह कदम वास्तव में आने वाले सालों में बुनियादी शिक्षा पर संसाधनों के खर्च में कमी ला सकता है।

पारदर्शिता बड़ा मुद्दा

पिछले चार सालों से केंद्र सरकार ने शिक्षा के लिए इनकम टैक्स, कारपोरेट

टैक्स, एक्साइज ड्यूटी और सर्विस टैक्स पर 2 प्रतिशत का अधिार (सेस) लगाया है। इससे सालाना चार से पांच हजार करोड़ रुपये जमा हुए हैं। मगर अभी भी इसमें कम ही पारदर्शिता है कि इस राशि को कैसे वितरित किया गया।

सार्थक पहुँच की चुनौती की रणनीति – अभ्यास का बेहतर नमूना

पहुँच और गुणवत्ता एक ही सिक्के दो पहलू हैं। इसके लिए सबसे उपयुक्त शब्द सार्थक पहुँच ही हो सकता है। इसमें दाखिले से लेकर बच्चों और शिक्षकों की लगातार उपस्थिति, किताबों और पढ़ाई के दूसरे साधनों की उपलब्धता, स्कूलों में पढ़ाई के माहौल और अंततः जहां बच्चे सीख सकें को शामिल किया जा सकता है।

मूल सिद्धांतों के बारे में पढ़ाना क्या बेहतर अभ्यास मॉडल हो सकता है।

देश भर से मिले आशाजनक हस्तक्षेप से काम के कुछ सिद्धान्तों का पता चलता है¹³ :

* सबसे ज्यादा वंचित की पहचान करना अच्छी शुरुआत है। क्रम से यह सुनिश्चित हो कि व्यवस्था अंतिम बच्चे तक पहले पहुँचे और कम वंचित को शामिल करने के लिए आगे बढ़े।

* अधिकारों के वास्तविक हस्तान्तरण (न केवल जिम्मेदारी और स्थानीय कार्यों को सशक्त बनाकर समुदाय, स्कूल और व्यवस्था संयोजन को मजबूती दी जाए। इस देश में अनुभव का धन है, खासकर गैर सरकारी संगठनों को जो समुदायों को उनके अधिकार से सशक्त और उनके लिए कार्यक्रमों की निगरानी करते हैं।

* शैक्षिक प्रशासकों/अमल करने वालों और स्थानीय अधिकारियों, शिक्षकों, माँ-बाप और बच्चों के बीच खुले संचार माध्यम का निर्माण। सूचना के अधिकार ने देश में सूचना प्राप्ति की सुगमता को जनता के हाथ का मजबूत हथियार बना दिया है। जिससे सरकार के साथ-साथ लोक समूहों से आसानी से जानकारी मिल सकती है।

* वर्ग कक्षाओं में सुधार और मूल्यांकन प्रक्रिया, विज्ञान शिक्षा को प्रयोगशाला, केंद्रों और संबंधित गतिविधियों से मजबूती देना और संचार तकनीक जैसे रेडियो के इस्तेमाल से स्कूल व्यवस्था को शक्ति प्रदान करना। स्कूल अकेले बना नहीं रह सकता। स्कूलों में और इसके आसपास गुंजायमान शिक्षा का माहौल बनाना, शिक्षा को स्थानीय और आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल से रचनात्मक और खोजी अभ्यास बनाने से वास्तव में प्रवाह को मोड़ा जा सकता है और स्कूल को बल मिल सकता है।

* शिक्षकों के अनुभव, क्षमता और ज्ञान का सम्मान करते हुए शिक्षक और उन्हें प्रशिक्षित करने वालों को अकादेमिक संसाधन सहायता मुहैया कराई जाए।

क्या प्रोत्साहन से बदलाव होगा?

विश्व भर की नीति और विकास सहायक मंडली में यह चर्चित तर्क हैं कि प्रोत्साहन मुश्किल परिस्थितियों में मददगार साबित हो सकता है। भारत में, जहां असुरक्षा, गरीब बच्चों की लगातार अनुपस्थिति और बच्चों के लिए स्कूलों में दोस्ताना माहौल की कमी और स्कूल की व्यवस्था ऐसी हो जिसमें बच्चे स्कूल छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं, वहां प्रोत्साहन कहां से आ जाएगा?

1990 के दशक के मध्य तक यह माना जाता था कि गरीब बच्चों/परिवारों को वित्तीय और दूसरे लाभों का प्रोत्साहन (यूनिफार्म, पाठ्य सामग्री और दोपहर का भोजन) देकर स्थिति को बदला जा सकता है। गरीबी इसमें सबसे बड़ी बाधा थी। यह माना जाता था कि समस्या लोगों के साथ है, व्यवस्था में नहीं।

शैक्षणिक संसाधन इकाई द्वारा हाल में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, उड़ीसा और महाराष्ट्र में किए गए अध्ययन से यह बात सामने आई कि यह मामला नहीं है।¹⁴

13. यह खंड आईएलओ और स्कूली शिक्षा और साक्षरता विभाग द्वारा चुने गए 17 अच्छे अभ्यास के शिक्षा संसाधन और साक्षरता इकाई दस्तावेजीकरण पर आधारित है। जीओआई इन 2006 और विमला रामचंद्रन (ईडी) गेटिंग चिल्ड्रेन बैक टू स्कूल – केस स्टडीज इन प्राइमरी एजुकेशन, सागे पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003.

14. विमला रामचंद्रन, निशी मेहरोत्रा, कामेश्वरी जांध्याला : शिक्षा में प्रोत्साहन – क्या बदलाव लाएगा? प्रोत्साहन और शिक्ष की छुपी कीमत पर प्लान इंटरनेशन द्वारा अप्रकाशित शोध अध्ययन, ईआरयू और प्लान इंटरनेशनल इंडिया, नई दिल्ली 2006.

शिक्षा की गुणवत्ता के लिए प्रोत्साहन काफी नहीं है।

इस अध्ययन से शायद हमें सबसे महत्वपूर्ण जानकारी यह मिली हो कि कुछ परिस्थितियों (खासकर सीखने के शुरूआती दौर में) में व्यक्तिगत और सक्रमल को प्रोत्साहन आवश्यक और उपयोगी हो सकती है लेकिन यह बच्चों के गुणवत्तापरक शिक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। सहयता प्राप्त बच्चे और उनके भाई-बहनों को इसका लाभ मिलता है। यहां तक कि वे हाई स्कूल की पढ़ाई भी पूरी कर लेते हैं लेकिन वे बच्चे अपने पीछे गांव को उसी दुष्क्रिय स्कूली व्यवस्था के साथ लगातार संघर्ष के लिए छोड़ जाते हैं।

एक गांव के दो परिवार, जिन्होंने अपनले किसी बच्चे को स्कूल नहीं भेजा, का कहना है कि सकूल काम नहीं करते और वे काफी गरीब हैं, दूसरे गांव में, जहां तस्वीर बिल्कुल अलग है, सरकारी प्राथमिक स्कूल निरंतर काम कर रहा है और गांव के करीब सभी बच्चों का दाखिल स्कूल में है। इस गांव में ग्रामीण शिक्षा समिति सक्रिय थी जो स्कूल की निगरानी करती है।

सीखने की जरूरतों का वातावरण बनाना

महाराष्ट्र और कर्नाटक की यात्रा के दौरान हमने देखा कि वहां बच्चों की शिक्षा के लिए ग्रामीण स्तर पर सक्रिय समिति और बाल सभाओं के माध्यम से प्रेरक वातावरण बनाए गए हैं। बाल पंचायतों और ग्रामीण स्तर के दूसरे फोरमों ने सामूहिक भागीदारी से प्रत्येक बच्चों को शिक्षा का अधिकार और बच्चों की भागीदारी को प्रोत्साहित किया है। हमने पाया कि 14 साल तक के करीब सभी बच्चे स्कूल जाते हैं। स्कूलों में मिड-डे मिल लगातार दिया जा रहा है, शिक्षक ज्यादा जिम्मेदार हैं और शायद ज्यादा मौजूद रहते हैं क्योंकि समाज की भागीदारी मजबूत है।

इस अध्ययन के दौरान हमें सबसे ज्यादा इस बात ने विचलित किया कि व्यक्तिगत प्रोत्साहन से भेदभाव में बढ़ोत्तरी हुई। हम उन बच्चों के भाई-बहनों से मिले जो हॉस्टल या आवासीय स्कूलों में रह कर पढ़ाई कर रहे हैं। एक परिवार ने एनजीओ को इस बात के लिए राजी कर लिया कि उसकी बेटी को मिलने वाला स्पान्सरशिप उसके बेटे को दे दिया जाए। स्पान्सरशिप जिसे स्कॉलरशिप भी कहा जाता है या आवासीय स्कूलों में पढ़ाई से संबंधित बच्चे को फायदा मिल सकता है लेकिन इससे उस बच्चे और उसके भाई-बहनों के बीच दूरियां बढ़ गईं। कुछ मामलों में तो गांव के स्कॉलरशिप पाए परिवार

और दूसरे गरीब परिवारों के बीच सामुदायिक विभाजन तक हो गया।

इससे जुड़ा एक मुद्दा हर जगह था, लाभ पाने वाले का चुनाव। बेहद गरीब/हाशिए पर रहे परिवार ज्यादातर गांवों में पीछे छूट गए दिखे। स्कॉलरशिप पानेवालों में उन परिवारों के बच्चों की संख्या ज्यादा दिखी जिनका दबदबा है या फिर समुदाय आधारित संस्थाओं में जो नेतृत्व स्थिति में हैं।

मुख्यधारा के स्कूलों के साथ काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं

कई गैर सरकारी संगठन पूरक शिक्षा केंद्र/ट्यूशन क्लास चलाते हैं। अल्प अवधि के शैक्षणिक कार्यक्रम/शिविर आयोजित करते हैं या स्थानीय प्राथमिक स्कूलों को अतिरिक्त शिक्षक मुहैया कराते हैं इनमें से ज्यादातर संगठनों को मुख्य धारा के स्कूलों के साथ काम करने में मुश्किल होती है। अंतरराष्ट्रीय दानदाता संस्थाओं से मिले कोष का उपयोग सामानान्तर व्यवस्था बनाने में किया गया है।

औपचारिक स्कूली व्यवस्था से अलग रास्ता अपनाना आकर्षक विकल्प है। खास कर गैर सरकारी संगठनों के लिए जिनके पास कोष का वैकल्पिक संसाधन है। लेकिन देश भर से मिले तथ्यों से पता चलता है कि मुख्य धारों के स्कूलों के साथ काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में हमने ऐसे गैर सरकारी संगठनों से मुलाकात की जिन्होंने व्यक्तिगत प्रोत्साहन को वापस ले लिया और अपना ध्यान औपचारिक स्कूली व्यवस्था पर केन्द्रित किया। उनका मंत्र है – सामुदायिक स्तर के क्रियाकलापों को बना रखों, शिक्षकों की मदद, शिक्षा विभाग के स्थानीय अधिकारियों और शिक्षकों से मजबूत संबंध बनाकर काम करना ताकि सही तरीके से स्कूल काम करता रहे यह सुनिश्चित हो और दोपहर का भोजन (मिड-डे मील) की व्यवस्था निरंतर बनी रहे। उपचारी कक्षाओं, ग्रामीण पुस्तकालय, स्कूल जाने से पहले की शिक्षा और बाल सभा/बाल पंचायत के माध्यम से बच्चों को सिखाने में मदद करना।

यह देखने में आया कि सार्वजनिक गतिविधियों जैसे विज्ञान मेला, पढ़ने और लिखने की प्रतियोगिता, भ्रमण और बाल सभाएं शिक्षा के लिए सकारात्मक माहौल बनाने में मददगार होती हैं। खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधियाँ और इसी तरह के समय-समय पर होने वाले कार्यक्रमों से बच्चों को अपनी रचनात्मक चीजों को दिखाने का मौका मिलता है और उनकी प्रबन्धकीय/सांगठनिक

क्षमता का पता चलता है।

उनका ध्यान गांव के प्रारम्भिक स्तर के सभी बच्चों पर रहता है। उनके काम ने यह साबित कर दिया है कि पूरी व्यवस्था को बदला जा सकता है और स्कूलों को जिम्मेदार बनाया जा सकता है।

शिक्षा के लिए मजबूत जन आंदोलन तैयार करना

व्यक्तिगत और स्कूली तौर पर प्रोत्साहन केवल उसी तरह प्रभाव है जैसा कि उनमें जागरूकता बढ़ाना। चर्चित कहावत है कि अगर हम पैसा फेंकते हैं तो केवल सामर्थ्यवान ही उसे हासिल कर पाएगा। सभी गांवों में हमने नमनू के तौर पर उस गांव को चुना जहां सबसे गरीब लोग रहते हैं, जिन्हें व्यक्तिगत और स्कूल की ओर से मिलने वाले प्रोत्साहन के बारे में पता नहीं था। ग्रामीण स्तर की बैठकों में वे कभी-कभार ही हिस्सा लेते थे। व्यक्तिगत या सामूहिक प्रोत्साहन को उपयोगी बनाने के लिए मजबूत जन संगठन/महिला संगठन बनाना, गांव के सबसे ज्यादा गरीब लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना और सभी सामाजिक समूहों तक सूचना का प्रसार करना जरूरी है।

इसके अलावा सामुदायिक लामबंदी कर पंचायतों को मजबूत और व्यापक गुणवत्ता वाली शिक्षा में ग्रामीण स्तर के साथ-साथ उन्हें सक्रिय प्रतिनिधि के रूप में शामिल किया जा सके। फैसला लेने की प्रिया में बच्चों और माता-पिता की निरंतर भागीदारी के लिए फोरम का गठन किया जाए।

समुदाय, स्कूल और बच्चों के बीच संबंध जरूरी

समुदाय, स्कूल और बच्चों के बीच संरचनाबद्ध संबंध से समुदाय सरकारी सेवाओं की पहुंच/प्रोत्साहन (पाठ्य पुस्तक, अनुसूचित जाति और जनजाति बच्चों के लिए यूनिफार्म, स्कॉलरशिप, निगरानी क्षमता (मिड-डे मील पर) और स्कूलों के चलाने में सक्षम हो सकता है। साथ ही बच्चे अपनी शिखा और सशक्तिकरण में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। शैक्षिक रूप से पिछड़े इलाकों में गैर-सरकारी संगठन बच्चों को उनका अधिकार जरूरी सुनिश्चित करवाते हैं और वैधानिक संस्थाएं सिर्फ कागजी समिति नहीं है।

अन्ततः गुणवत्तता बच्चों और माँ-बाप की जिम्मेदार बनाती हैं। जिम्मेदारी और पारदर्शिता एक साथ चलते हैं। गांव और बच्चों के प्रकार की तारीख को सार्वजनिक जगहों जैसे ग्राम सभा में स्थान देना जरूरी है। स्कूल के बाहर

एक सूचनापट लगाकर उसमें संस्थान के बारे में बुनिरयादी सूचना, बच्चों, शिक्षकों और सरकारी प्रोत्साहन की उपलब्धता और मिड-डे मील कार्यक्रम के बारे में जानकारी देना बड़ा बदलाव लाएगा।

अगर सीखने की क्षमता को मापने के प्रस्ताव को मान लिया जाता है तो इसके नतीजे को बच्चों और मां-बाप के साथ बांटा जाना जरूरी है। यह प्रक्रिया गुणवत्ता का महत्वपूर्ण निर्धारक है। सीखने की क्षमता का विश्लेषण शिक्षकों द्वारा किया जाएगा और पूरी योजना प्रक्रिया स्थानीय स्तर पर ही होगी।

शिक्षा का अधिकार और इसे अमल में लाना

2002 में 86वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद बनी नई धारा 21 ए इस तरह है : “शिक्षा का अधिकार छह से चौदह साल की उम्र के सभी बच्चों को राज्य सरकारें मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा मुहैया कराएंगी और इस संबंध में राज्य सरकारें कानून भी बना सकती हैं।”

गैर सरकारी संगठनों और सामाजिक कार्य समूहों द्वारा कई सालों से इसकी वकालत करने के बाद यह नतीजा सामने आया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2004 का मसौदा तैयार कर इसे संसद के सामने विचार के लिए रखा। इसमें 2005 तक कुछ बदलाव किए गए। लेकिन इसमें शिक्षा का कानूनी अधिकार का प्रावधान कभी भी नहीं किया गया। केंद्र सरकार ने इस मसौदे को सभी राज्य सरकारों को भिजवा दिया और उनसे सही विधेयक/अध्यादेश लाने को कहा ताकि 86वें संविधान संशोधन को प्रभावी तरीके से अमल में लाया जाए।

हालांकि मसौदे में यह सुरक्षा मुहैया कराई गई कि सभी बच्चों के लिए औपचारिक स्कूलों का प्रबन्ध होगा और पारगमन व्यवस्था थोड़े समय के लिए है। लेकिन वास्तविकता कुछ और ही कहानी कहती है। ज्यादातर राज्य सरकारों की गड़बड़ आर्थिक स्थिति ने पारगमन नीति, जैसे कि शिक्षा गारंटी (ईजीएस) और वैकल्पिक स्कूल (एएस) को बेहतर विकल्प बना दिया। मध्यप्रदेश की शिक्षा गारंटी योजना के नमूने ने इसे यहां सहारा दिया (यहां तक कि कई शिक्षा गारंटी योजना केंद्र को औपचारिक प्राथमिक स्कूल का दर्जा दिया जा चुका है) और पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार ने फैसला लिया था कि भविष्य में औपचारिक स्कूल शिक्षकों की जगह ‘गुरुजी’ की बहाली होगी।

पश्चिम बंगाल और राजस्थान की सरकारों ने भी प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था के विस्तार की मांग को पूरा करने के लिए ठेके पर शिक्षकों की नियुक्ति का विकल्प चुना है। स्पष्ट रूप से शिक्षा गारंटी योजना और वैकल्पिक स्कूल आकर्षक मॉडल बन गए हैं। खास कर तब जब राज्य सरकारों पर कोष का कड़ा दबाव होता है। इस पर ध्यान देते हुए 11वीं पंचर्षीय योजना के दौरान राज्य सरकारों को उम्मीद है कि सर्व शिक्षा अभियान को अमलीजामा पहनाने के लिए 50 प्रतिशत कोष मुहैया कराई जाएगी। यह चिंतित करने वाली प्रवृत्ति है। कानूनी साधनों की अनुपस्थिति में शिक्षा का अधिकार को लागू करना कैसे प्रभावी हो सकता है?

आगे का रास्ता

चाहे जो भी हो हम शिक्षा की पहुँच, गुणवत्ता और प्रासंगिकता के मुद्दे को दृष्टिकोण देने का प्रयत्न करेंगे। इसके लिए हम शिक्षा व्यवस्था के कार्यान्वयन और जिम्मेदार के तीन बुनियादी तत्वों की ओर पीछे मुड़कर देखते हैं।

* छह से चौदह साल की उम्र के सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया कराने के लिए प्रारम्भिक जिम्मेवारी सौंपने की सरकार को आवश्यकता है।

* लोक समूह संगठनों/जन संगठनों को सतर्क होने की जरूरत है और यह सुनिश्चित हो कि औपचारिक स्कूल व्यवस्था आशातीत काम करे। साथ ही जहां संभव हो सरकार द्वारा बुनियाद को मजबूती दी जाए ताकि समुदाय और स्कूल का रिश्ता आगे बढ़ता जाए। निरंतर निगरानी वास्तव में वह कीमत है जिसे हमारे समाज के लोकतांत्रिक ढांचे को बनाए रखने के लिए हम चुकाते हैं।

* प्राथमिक स्कूली व्यवस्था अकेले टिक नहीं सकती हैं। स्कूल पूर्व शिक्षा, अच्छा पोषण और देखाभल पर बच्चों के शुरूआती दिनों में ध्यान केंद्रित करना और ध्यान बनाए रखना जरूरी है। इससे पीछे से मिलने वाली सहायता प्रभावी तरीके से काम करती है। बच्चों और मां-बाप को समान रूप से प्राथमिक शिक्षा को वृहत ज्ञान या आगे की शिक्षा/प्रशिक्षण के मील के पत्थर के रूप में देखना चाहिए। ज्यादा जरूरी अपने विश्वास को विकसित करना है ताकि दुनिया से समझौता किया जा सके। समुदाय स्तर पर पहल से युवाओं में भविष्य के प्रति उम्मीद जगती है और उन्हें अपनी क्षमता पर विश्वास होता है कि वे अपने लिए बेहतर भविष्य बना सकते हैं। वे उस शक्तिशाली पंप

की तरह काम करते हैं। जो स्कूली व्यवस्था के माध्यम से बच्चों की नई पीढ़ी को ऊपर खींच सकते हैं। आगे का रास्ता तैयार करने के लिए हम सिर्फ सरकार के भरोसे नहीं रह सकते। वृहद विकास समुदायों को एक साथ बैठकर यह सोचने की जरूरत है कि हम कैसे बच्चों और उनके माँ-बाप में उम्मीद लगा सकते हैं। दानदाता, कोष के भागीदारों (भारतीय गैर-सरकारी संगठनों सहित) और सरकार को एक सामूहिक साझेदारी अपनाने की जरूरत है जिसमें यह विचार बने कि क्या किया जा सकता है और किससे समझौता नहीं हो सकता। असमान मॉडलों (जैसे अनौपचारिक शिक्षा, रात्रि पाठशाला और इसी तरह के) को अनिवार्य रूप से स्थायी बनाना और समानान्तर व अंशकालिक शैक्षिक मौके मुहैया कराना ताकि बच्चों पर शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार का प्रभाव पड़े।

इसका कोई सरल उपाय नहीं है अगर हम यूईई के लक्ष्य को हासिल करने के बारे में गंभीर हैं और चाहते हैं कि सरकारी व्यवस्था ठीक से काम करे तो भारतीय गैर-सरकारी संगठनों और दानदाता समुदायों को गंभीरता से उन नीतियों पर विचार करने की जरूरत है जो शिक्षा के अधिकार को बढ़ावा दे सकता है। सार्वजनिक कार्य, वकालत और काम में हाथ बंटाना जमीनी स्तर पर व्यवस्था का कायापलट करने के लिए जरूरी है और इससे भारत के बच्चों को जिम्मेदार बना सकते हैं।

संदर्भ

1. यश अग्रवाल (1999, 2000, 2001); जिला प्राथमिक शिक्षा योजना, भारत सरकार; ट्रेंड्स इन एक्सेस इंड रिटेंशन, एनआईईपीए (नीपा), नई दिल्ली।
2. यश अग्रवाल (2000); पांच सालों में कितने लोगों ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की, नीपा, नई दिल्ली।
3. वार्षिक रपट (1997-98), शिक्षा विभाग, नई दिल्ली।
4. अनुराधा डे (2000), बुनियादी शिक्षा में निजी स्कूलों की भूमिका, नीपा और मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
5. महेंद्र देव और जोस मोइल, 2002, 1990 के दशक में सामाजिक क्षेत्र पर खर्च : केंद्र और राज्यों के बजट का विश्लेषण? इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2 मार्च।

6. ट्रेज और अमर्त्य सेन (Eds), 1996, भारत का विकास : चुनिंदा क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में, ओयूपी, नई दिल्ली।
7. ट्रेज, जीन और हरीश गजदर (1996); उत्तर प्रदेश : द बर्डेन ऑफ इवरशिया इन जीन, ट्रेज और अमर्त्य सेन (Eds), 1996, भारत का विकास : चुनिंदा क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में, ओयूपी, नई दिल्ली।
8. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और कार्य योजना (1986), नई दिल्ली, 1986
9. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति: कार्य योजना 1992, नई दिल्ली।
10. आर. गोविंदा (1997), शैक्षिक प्रबंधन का विकेंद्रीकरण : दक्षिण एशिया का अनुभव, आईआईईपी, पेरिस।
11. आर. गोविंदा, ईडी, 2002, भारत की बुनियादी शिक्षा रपट, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, प्रेस, नई दिल्ली।
12. भारत : प्राथमिक शिक्षा : उपलब्धि और चुनौती (1996), विश्व बैंक
13. रेखा कौल (2001), प्राथमिक शिक्षा की पहुंच : कक्षा से बाहर, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, Vol. XXXVI. नवम्बर, 2, 13 जनवरी।
15. एनयूईपीएव (NUEPA), शिक्षा का राजनीतिक एजेंड, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. प्रातिची (भारत) ट्रस्ट : प्रातिची शिक्षा रपट, नई दिल्ली 2002।
17. बुनियादी शिक्षा पर सार्वजनिक रपट (PROBE) : (1999), ओयूपी, नई दिल्ली।
18. विमला रामचंद्रन (Eds, 1998), उद्देश्य और कार्रवाई के बीच अंतर पर सेतु – दक्षिण एशिया में महिलाओं और लड़कियों की शिक्षा, किताब की संपादक और भारतीय अनुभव की लेखिका, यूनेस्को – प्रोप (PORAP), बैंकाक और एएसपीबीआई, नई दिल्ली, मई।
19. विमला रामचंद्रन (Eds, 2003), बच्चों को स्कूल लौटाना : प्राथमिक शिक्षा पर अध्ययन, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।
20. विमला रामचंद्रन (Eds, 2004), सांप और सीढ़ी : गरीबी के संदर्भ में

बच्चों के प्रभावी तरीके से सफलतापूर्वक प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के तत्व; दक्षिण एशियाई मानव विकास रिपोर्ट संख्या 6, विश्व बैंक, नई दिल्ली।

21. विमला रामचंद्रन (2004), श्रेणीबद्ध पहुंच : प्राथमिक शिक्षा में लिंग और निष्पक्षता, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।

22. दीपा शंकर और वेंकटेश सुंदररामण, 2003, भारत में प्राथमिक स्कूल में दाखिला और समापन में निष्पक्षता, दक्षिण एशियाई मानव विकास रिपोर्ट संख्या 4, विश्व बैंक, नई दिल्ली।

23. ए. वैद्यनाथन और पी.आर. गोपीनाथन नायर (Eds. 2001), ग्रामीण भारत में प्राथमिक शिक्षा : जमीनी स्तर का अवलोकन, नई दिल्ली : सेज प्रकाशन।

24. एआर वसावी (1997), “ब्लू प्रिंट फॉर रूरल प्राइमरी एडुकेशन : हाउ विएबल?” इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, Vol. XXXII. नं. 50, 13-19 दिसम्बर।

25. डॉ. लीला विसारिया (2001) : भारत में प्राथमिक शिक्षा : हम क्या जानते हैं, जिला प्राथमिक शिक्षा योजना में लिंग और सामाजिक समानता पर विमला रामचंद्रन की आने वाली रिपोर्ट, ईसीईपीओ, नई दिल्ली।

26. विश्व बैंक, 2001, भारत में उच्च प्राथमिक शिक्षा में सुधार और विस्तार, वाशिंगटन डी.सी., विश्व बैंक

27. डॉ. आर. गोविंदा और के. बिस्वाल : दसवीं योजना में प्राथमिक शिक्षा: प्रतिज्ञा, प्रदर्शन और परिदृश्य यूएनडीपी, नई दिल्ली 2006।

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति : एक अवलोकन

इमराना कादिर¹

स्वास्थ्य के प्रति भिन्न-भिन्न लोगों के मन में भिन्न-भिन्न छवियां होती हैं। कोई व्यक्ति सभी सुविधाओं से लैस अस्पतालों परंपरागत पेशाकों में सुसज्जित नर्सों और मुस्कुराते कर्मचारियों के बारे में ही सोचेगा। आपकी धारणा फिटनेस के प्रति गंभीर व्यक्ति, जागिंग करने वाले ऐसे व्यक्ति के स्वास्थ्य रहने को लेकर हो सकती है जो अपनी खुराक, आराम और व्यायाम के प्रति सतर्क हों। कुछ अन्य लोग इसके लिए आवास, भोजन और शुद्ध पेयजल तथा एक स्थायी नौकरी को ही काफी मानते हैं। जिससे उपर्युक्त सभी चीजें सुनिश्चित होती हैं।

यह सब इस पर निर्भर करता है कि हम किस तरह को समाज में हैं जिस तरह के दबाव का हम सामना करते हैं। इस पर सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि व्यक्ति या समाज से स्वास्थ्य का सरोकार है। दूसरे शब्दों में, यह दृष्टिकोण है जिसका उपयोग व्यक्ति स्वास्थ्य से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों के लिए करता है।

क्या स्वास्थ्य विशुद्ध रूप से मानव जीव विज्ञान या उपलब्ध प्रौद्योगिकी से जुड़ी प्रक्रिया है जिसमें रोग, निदान, उपचार या लक्षण पर काबू पाया जाता है और जिसे जैव चिकित्सा के नज़रिए से देखा जाता है? क्या यह हमारी सामाजिक वस्तुस्थिति की प्रक्रिया है जिसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है, या यह इन दोनों का मिश्रित रूप है जो स्वास्थ्य के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में फैला हुआ है?

स्वास्थ्य का संपूर्ण दृष्टिकोण

संपूर्ण दृष्टिकोण को सिर्फ मौजूदा प्रौद्योगिकी और इससे संबंधित संगठन के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता है। यह उन सामाजिक निर्धारकों के महत्व को भी रेखांकित करता है जो कल्याण में योगदान करते हैं जिसमें खाद्य उपलब्धता और जनसंख्या की पोषण स्थिति, पेयजल आपूर्ति, आवास, परिवहन, शिक्षा,

1. प्रोफेसर इमराना कादिर जन-स्वास्थ्य मामलों की जानी मानी विशेषज्ञ और लेखिका हैं। वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सोशल मेडिसिन एंड कम्युनिटी हेल्थ विभाग में पढ़ाती हैं।

रोजगार और अन्य तथ्यों के अलावा महिलाओं की स्थिति शामिल हैं।

लोगों के स्वास्थ्य को तब जाकर सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और प्रौद्योगिकी व्यक्तियों के पारस्परिक प्रभाव के नतीजों पर परिभाषित किया जा सकता है। यह परिणाम लिंग और जाति, वर्ग स्तरीकरण, क्षेत्रीय और जातीय तथ्यों पर निर्भर करता है।

पहले स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में बात करें और फिर स्वास्थ्य निर्धारकों के किसी एक पहलु पर चर्चा करें। ये कुछ ऐसी बातें जिनकी हम अक्सर पूरी सहराना नहीं करते, लेकिन यदि सभी के लिए हम अक्सर पूरी सराहना नहीं करते, लेकिन यदि सभी के लिए स्वास्थ्य उपलब्ध कराने की दिशा में हम कात करते हैं तो हमें इस पर निश्चित रूप से विचार करना चाहिए।

क्या इसका मतलब यह है कि स्वास्थ्य सेवाएं महत्वपूर्ण नहीं हैं? इसका मतलब यह कतई नहीं है। स्वास्थ्य सेवाओं का प्रावधान भारतीय गणराज्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों में से एक हैं जैसा कि इसके संविधान के निर्देशिका सिद्धान्तों में बनाया गया है। क्या इसका यह मतलब है कि स्वास्थ्य सेवा प्रदाता और नियोजक विशेष विशेषज्ञों के तौर पर महज अपनी छवि कायम करने के बजाए स्वास्थ्य के लिए अन्य आवश्यक निवेश की मांग करते हैं।

जन-स्वास्थ्य के आयाम = सेवाओं की अनिवार्य बुनावट + कल्याण – निवेश

स्वास्थ्य सेवाएं अपने आप में अति जटिल प्रक्रिया है। वे या तो क्लिनिकल या जन-स्वास्थ्य सेवाओं के रूप में संचालित होती हैं। क्लिनिकल स्वास्थ्य सेवाएं उन लोगों के लिए व्यक्तिगत सेवाएं हैं जिन्हें चिकित्सकीय देखभाल की जरूरतों के अनुरूप या उपलब्ध सर्वोत्तम प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराता है।

जनस्वास्थ्य सेवाएं, दरअसल संगठनात्मक रूप से जटिल हैं। इनके कई आयाम हैं :

(ए) वे प्रवर्तक, निरोधक, रोगनाशक और सुधारात्मक सेवाओं का मिश्रित रूप प्रदान करते हैं। प्रतिरक्षण, साफ-सफाई और पोषहार के जरिए स्वास्थ्य शिक्षा और सूचनाओं का प्रसाद कुछ निश्चित रक्षात्मक स्वास्थ्य प्रक्रियाओं को बढ़ावा देता है। इसके जरिए रोग के पनपने से बचाव का भी प्रयास किया जाता है।

क्लिनिकल मध्यस्थता के माध्यम से जन स्वास्थ्य प्रणाली में समजा के उन लोगों को रोग मुक्त और रोगों बचाव किया जाता है जिनमें संक्रामक रोगों का पता लग चुका है। स्वास्थ्य लाभ के जरिए लोगों को अशक्तता से छुटकारा दिलाने में सहायता की जाती है।

(बी) संक्रामक रोगों के प्रसार पर काबू पाने के लिए जन-स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा क्लिनिकल सुविधा प्रदान करना अभी भी भारत में असंक्रामक रोगों की तुलना में इस तरह के जानलेवा रोगों पर नियंत्रण, रोकथाम या इसके निवारण का सर्वाधिक प्रभावशाली साधन बना हुआ है। जन स्वास्थ्य का एक कारगर हथियार बनने के लिए क्लिनिकल दवा प्रणाली में सुधार लाने की जरूरत है ताकि व्यक्ति विशेष पर ध्यान केंद्रित रहने के बजाए इसका दायरा बढ़ाने की दिशा में बेहतर प्रभाव क्षेत्र बनाने का प्रयास किया सके। इस प्रकार इससे एक हद तक संक्रमण के खतरे को कम किया जा सकता है और रोगों के प्रसार पर काबू पाया जा सकता है तथा असुरक्षित आबादी की रक्षा की जा सकती है। ऐसा करते हुए आबादी में रोग के पनपने की गति और इतिहास पर काबू पाया जा सकता है। इस तरह क्लिनिकल मेडिसिन जन स्वास्थ्य के लिए 'मेडिकल केयर सिस्टम' में परिणाम हो जाता है जहां व्यक्ति विशेष पर केंद्रित रहने के बजाए क्लिनिकल सेवाएं भी एक उद्देश्य बन जाती हैं;

(सी) किसी रोग नियंत्रण के प्रवर्तक, निरोधक, रोगनाशक और सुधारात्मक पहलुओं के एकीकरण से इतन जन स्वास्थ्य सेवाओं में सामान्य रणनीतियों के साथ विभिन्न कार्यक्रमों के बीच एक और स्तर पर एकीकरण की आवश्यकता होती है। ये कार्यक्रम परिवार नियोजन और एड्स के बचाव के लिए कंडोम के इस्तेमाल, शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) और मातृत्व दर (एमएमआर) में कमी लाने के लिए प्रतिरक्षण से संबंधित हो सकते हैं। इसके बाद जन स्वास्थ्य सेवाओं को अन्य तथ्यों के अलावा कर्मचारियों, साझा परिचालन, परिवहन और प्रशिक्षण की आवश्यकता के अनुसार संचालित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जन स्वास्थ्य सेवाओं को क्षैतिज और लंबवत दोनों दिशा में समान रूप से एकीकृत कार्यक्रम के तौर पर समझा जा सकता है।

(डी) सेवाओं के ये विभिन्न तत्व श्रेणीबद्ध नेटवर्क के जरिए मुहैया कराए जाते हैं। एक ऐसा नेटवर्क जो प्रथमिक स्तर पर सरलतम और बुनियादी सेवाओं की पेशकश करता है और इससे ऊपर यह समर्थक, द्वितीय तथा तृतीय स्तर की देखभाल सेवा उपलब्ध कराता है। ये परतें दो तरफा उल्लेखनीय संपर्क

से बंधी होती है और यही स्वास्थ्य सेवाओं की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

हालांकि सच्चाई यही है कि अधिकांश प्रभावी जन स्वास्थ्य प्रणालियां तब तक बेहतर संभावित नतीजे नहीं दे सकतीं जब तक कि हमारे द्वारा शुरू किए गए कल्याणकारी निवेश से सहयोग नहीं मिलता : मसलन आबादी के लिए खाद्य उपलब्धता और उसकी पोषण स्थिति, पेयजल आपूर्ति, आवास, परिवहन, शिक्षा, रोजगार और लैंगिक समानता। विकासशील देशों के लिए ये काफी अहम निवेश हैं जिसके बिना रोगों पर काबू पाने में स्वास्थ्य प्रणाली की भूमिका काफी तुच्छ हो जाती है।

पर्यावरणिक स्थितियां और मृत्यु दर

(यह अनुभूति विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारक पर आयोग के गठन में झलकता है। पर्यावरण संबंधी कारणों से होने वाली बीमारियों पर जारी इसकी रिपोर्ट² में बताया गया है कि विकासशील देशों में 24 प्रतिशत मृत्यु दर डायरिया, निमोनिया, मलेरिया, क्षय रोग (टीबी) और कुपोषण जैसी पर्यावरण संबंधी स्थितियों के कारण होती है।

(यह रिपोर्ट हमारे उस दावे का समर्थन करती है जिसके अनुसार ऐसी सेवाओं का मुल्यांकन किए जाने और संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में निर्धारण की जरूरत है। जहां स्वास्थ्य नियोजन बड़े पैमाने पर कल्याणकारी निवेश से निरंतर जुड़ा रहता है। यह सिर्फ इसलिए जरूरी नहीं है कि स्वास्थ्य उन पर निर्भर करता बल्कि इसलिए भी कि सेवाओं तक पहुँच और सेवा की प्रकृति स्वयं सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सच्चाईयों से निर्धारित होती है।

मौजूदा स्वास्थ्य सेवाएं : विषम और खंडित

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की मिश्रित प्रणाली है जिसमें आधुनिक के साथ-साथ

2. प्रूस-उस्तून ए. एंड कोरवालन सी, 2006, प्रीवेंटिंग डिजीज थ्रू हेल्थ एनवायरमेंट्स : टूवार्ड्स एन एस्टिमेट ऑफ एनवायरमेंटल बर्डन ऑफ डिजीज, जीनेवा, डब्ल्यूएचओ, पीपी 11-12
3. गर्वनमेंट ऑफ इंडिया, 2002 हेल्थ इन्फार्मेशन ऑफ इंडिया 1999, सीबीएचआई, डीजीएचएस, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, पीपी 138

परंपरागत प्रणाली शामिल हैं। यहां स्वास्थ्य प्रदाता आधुनिक जीवन के चिकित्सा पेशेवरों से लेकर परंपरागत दवाओं पर आधारित पारंपरिक दवाइयों वाले चिकित्सक और इनमें अल्प प्रशिक्षित – यथा रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर (आरएमपी) या बगैर किसी औपचारिक प्रशिक्षण वाले और थोड़े बहुत कार्य अनुभव के आधार पर बने प्रैक्टिशनर भी शामिल हैं। इसके अलावा यहाँ कई पारा मेडिकल कर्मचारी और 'दाई' या प्रसव सहयोगी कर्मचारी जैसे परंपरागत स्वास्थ्य प्रदाता भी हैं।

आधुनिक चिकित्सा सेवाएं सरकार के साथ-साथ गैर-सरकारी संगठनों तथा निजी क्षेत्रों उपलब्ध कराई जाती हैं। परंपरागत प्रणालियों के बारे में कहा जाता है कि 1970 के दशक के मध्य से ही इसने स्वास्थ्य सेवाओं के स्तर पर खासी पकड़ बना ली है। इनसे जुड़े कई कर्मचारियों को जन-स्वास्थ्य सेवाओं से राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन (एनआरएचएम) के आयुष अयवयव (एवाईयूएसएच अथवा आयुर्वेदिक, यूनानी, सिद्धि तथा होम्योपैथ) से जोड़ा जा रहा है।

हालांकि निजी क्षेत्रों में और भी कई चिकित्सा सेवा संस्थान खुले हैं, लेकिन धीमी गति से ही सही इसके बावजूद सार्वजनिक क्षेत्रों के अस्पतालों की कुल संख्या 15,501 थी। इनमें से 10,848 निजी क्षेत्रों के अस्पताल थे जो कि एक बड़ी संख्या को दर्शाता है। लेकिन निजी अस्पतालों के पास कुल 6,81,643 बिस्तरों³ में से सिर्फ 2,53,43 बिस्तर ही थे। यह आंकड़ा दर्शाता है कि बड़े-बड़े अस्पताल अभी भी सार्वजनिक क्षेत्रों के अधीन ही हैं। या फिर, इसे ग्रामीण-शहरी नजरिए से देखें। हेल्थ इन्फार्मेशन ऑफ इंडिया 2004 की रिपोर्ट के अनुसार, देश में 985 शहरी अस्पतालों की तुलना में 585 ग्रामीण हैं। इससे शहरी सुविधाओं के प्रति झुकाव जाहिर होता है। जहां सिर्फ सामाजिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी) ने ही ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति इस भेदभाव को पाटने की कोशिश की है। अगर हम अस्पतालों में सीएचसी को भी शामिल कर दें तो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के अस्पतालों की कुल संख्या 5,479 हो जाती हैं। (तालिका 1)

तालिका 1 : ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सरकारी एलोपैथिक अस्पतालों और बिस्तरों की संख्या (सीएचसी सहित)

स्रोत : हेल्थ इन्फार्मेशन ऑफ इंडिया 204 पीपी-151

नोट : पीएचसी, एमसीएच/आरसीएच केंद्र, पीपीसी, एफडब्ल्यूसी, नगर निगम केंद्रों आदि को अस्पतालों में शामिल नहीं किया गया है, हालांकि इन केंद्रों में कुछ बिस्तर हैं। सरकारी अस्पतालों में केंद्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय निकाय की सरकारों के अस्पतालों को शामिल किया गया है।

(ए) एक कुष्ठ अस्पताल-बिस्तरों की संख्या नहीं दी गई है;

(बी) दिल्ली में ग्रामीण और शहरी अस्पतालों की अवधारणा नहीं रखी गई है;

(सी) एक सीएचसी में औसतन 30 बिस्तर का अनुमान लगाया गया है;

(डी) इसमें सीएचएस (348) तथा अन्य ग्रामीण और शहरी अस्पतालों (788 अस्पताल और 64987 बिस्तर) शामिल हैं। जिसमें शहरी और ग्रामीण स्तर के अस्पतालों का अलग-अलग जिक्र नहीं किया गया है। * इसमें 149 तालुक अस्पताल शामिल हैं। जो सीएचसी की तरह काम करते हैं; ** तृतीयक और सुपरस्पेशियल्टी अस्पतालों की सूचना शामिल नहीं की गई है। *** एक सुपर स्पेशियल्टी अस्पताल (सिर्फ कार्डियोलॉजी के लिए अब आउटडोर चिकित्सा सेवा भी) : राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व की स्थिति, एनआर : कोई रिपोर्ट नहीं।

यही तालिका इन अस्पतालों के राज्य आधारित वितरण को भी दर्शाती है; पहली नज़र में ही उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। योजना आयोग के मुताबिक⁴ साल 2004 में ग्रामीण आधारभूत संरचना की स्थिति इस प्रकार रही; 3,344 सीएचसी, 23236 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) और 1,46,026 उपकेंद्र।

कर्मचारियों का अभाव : स्वास्थ्य सेवाओं के लिए गंभीर संकट

आंकड़े आपको चौंका सकते हैं। हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2004 की रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में कई गुना ज्यादा यानि 5,72,253 डॉक्टर या तो निजी अस्पतालों में या विदेशों में कार्यरत हैं। इस वजह से उन राज्यों में गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है जहां बड़ी संख्या में डॉक्टरों के पद खाली पड़े हुए हैं। (तालिका 2) ही ऐसे प्रत्येक कर्मचारी के गंभीर संकट को दर्शाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार उपलब्ध वैकल्पिक व्यवस्था से ही

4. योजना आयोग, 2006; ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के तहत जन स्वास्थ्य सेवाओं के कार्यकारिणी समूह की रिपोर्ट, नई दिल्ली, योजना आयोग।

श्रमशक्ति की भरपाई का प्रयास कर रही हैं जो अच्छी-खासी संख्या में हैं।
(तालिका-3) हालांकि दुर्भाग्यवश उनके कार्यों में के अनुरूप पूरक बनने के बजाए उन्हें पीएचसी डॉक्टरों के रूप में लगाया जा रहा है।

तालिका 3 : ग्रामीण इलाकों में कार्यरत स्वास्थ्यकर्मी (सरकारी)

स्वास्थ्यकर्मियों के प्रकार वांछित वर्तमानअभाव अनुमोदित खाली पद

(आर)(पी) (आर-पी) (एस) (एस-पी)

पीएचसी डॉक्टर

कुल विशेषज्ञ

फिजिशियन

स्त्री रोग विशेषज्ञ

सर्जन

प्रखंड विस्तार शिक्षक

एचए (पुरुष)

एचए/एलएचवी (महिला)

एमपीडब्ल्यू (पुरुष)

फार्मासिस्ट

लैब टेक्निशियन

एएनएम/एमपीडब्ल्यू (महिला)

नर्स मिडवाइफ

स्रोत : हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2005

तालिका 3 : वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली के तहत पंजीकृत पैक्टिशनरों की संख्या

वर्ष आयुर्वेदिक यूनानी सिद्धा प्राकृतिक चिकित्सा होम्योपैथी कुल

1999 367528 41221 12915 388 189361

स्रोत : हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2005

(सार्वजनिक क्षेत्रों की गरीबी कहां से आती हैं, इसे जानने के लिए में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए संसाधनों की आबंटन पद्धति की जांच करनी होगी।

- वर्ष 1980 के दशक और इससे पहले तक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के मद में आबंटन कुल आबंटन का 3.97 प्रतिशत से आगे नहीं बढ़ा। इनती राशि के तहत नौवीं और दसवीं योजना को छोड़कर स्वास्थ्य के लिए कुल योजना निवेश का 1.8 प्रतिशत से ज्यादा नहीं मिल पाया। नौवीं दसवीं योजना में ही इसके लिए राशि परिवार कल्याण कार्यक्रम (तालिका 4) की राशि से थोड़ी अधिक मिली। स्वास्थ्य की दिशा में सरकार की पहल स्वज्ञस्थ्य से संबंधित सभी कार्यक्रमों की अपेक्षा हमेशा जनसंख्या नियंत्रण के एकल कार्यक्रम पर ही केंद्रित रही;

- सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के प्रतिशत के नजरिए से देखा जाए तो स्वास्थ्य के क्षेत्र में मौजूदा निवेश 1990 से 1999⁵ के दौरान 1.3 प्रतिशत से खिसकर 0.9 प्रतिशत पहुँच गया है और वार्षिक बजट अभिभाषण में यह आबंटन प्रतिशत बढ़ाए जाने के वादे के बावजूद अभी भी उसी स्थिति में है।

- स्वास्थ्य क्षेत्र में राष्ट्रीय रोग नियंत्रण कार्यक्रमों पर हुआ व्यय (रेखाचित्रा-1) दर्शाता है कि देशव्यापी सभी संक्रमणकारी रोगों के नियंत्रण (एनवीबीडीसी) की तुलना में एड्स नियंत्रण पर जोर देने का चलन बढ़ गया है, जैसा कि कुष्ठ रोग और तपेदिक के मामलों में देखा गया है।⁶

तालिका 4 : संसाधनों के आबंटन का ढांचा

अवधि कुल योजना निवेश व्यय (सभी विभागाध्यक्ष) स्वास्थ्य परिवार कल्याण आईएसएमएंडएच आयुष कुल

छठी योजना

(1980-85)

सातवीं योजना

5. भारत सरकार, 2000 : राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली।

6. सागर ए. 2006 : 'हेल्थ', अल्टरनेटिव इकॉनामिक सर्वे ऑफ इंडिया 2005-2006, इंडसएम्पावरिंग मासेज, नई दिल्ली दानिश बुक्स, पीपी 251-259

(1985-90)
वार्षिक योजना
(1990-91)
आठवीं योजना
(1992-97)
नौवीं योजना
(1997-02)
दसवीं योजना
(2002-07)

स्रोत : हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2005 पीपी-79

• केंद्रीय बजट में स्वास्थ्य के प्रति नितांत भेदभाव बरता गया है। दसवीं योजना में परिवार कल्याण के लिए 6.424 करोड़ रुपए की तुलना में स्वास्थ्य के लिए 2,908 करोड़ रुपये आबंटित किए गए हैं। यही वितरण औसत आठवीं और नौवीं पंचवर्षीय योजना में भी देखा गया जहां परिवार कल्याण के लिए आवंटन राशि क्रमशः 6,5000 करोड़ और 15,120.20 करोड़ रुपए की तुलना में स्वास्थ्य के लिए क्रमशः 1,712 करोड़ रुपये और 5,118.69 करोड़ रुपए थी।⁷ ये आंकड़े स्वास्थ्य क्षेत्र के प्रति गहरे भेदभाव को दर्शाते हैं जहां भारत की योजनाओं में परिवार कल्याण के लिए आबंटित राशि की तुलना में स्वास्थ्य के लिए न केवल एक-तिहाई राशि मात्र⁸ है बल्कि एचडीआई सूचकांक में शामिल 20 देशों की तुलना में भी काफी कम राशि दी गई है जहां के जीडीपी का 5.4 से लेकर 8.1 प्रतिशत तक की राशि स्वास्थ्य के लिए आबंटित की गई है।⁹

कल्याण मद में ब्याज राशि की कटौति किए जाने को लेकर दलील दी गई है कि निजी क्षेत्रों की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र कारगर नहीं हैं। इसलिए सब्सिडी में परिवर्तन तर्कसंगत है। लेकिन अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों के

7. गर्वनमेंट ऑफ इंडिया, 2005 : 'हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2004' सीबीएचआई, बीजीएचएस, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली पीपी-80.
8. गर्वनमेंट ऑफ इंडिया, 2005 : 'हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया 2004' सीबीएचआई, डीजीएचएस, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, पीपी 370
9. यूएनडीपी, 2004, ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली पीपी 156-158

साक्ष्य इस तर्क को जायज नहीं ठहराते। ये दोनों देश स्वास्थ्य के क्षेत्र में अपने-अपने देशों में क्रमशः 12 प्रतिशत और 6 प्रतिशत राशि खर्च रकते हैं। अमेरिका में जहां निजी बाजार और बीमा के जरिए ऐसी सेवाएं मुख्य रूप से प्रदान की जाती हैं वहीं ब्रिटेन सम्पूर्ण कवरेज के लिए अभी प्रदान की जाती हैं वहीं ब्रिटेन सम्पूर्ण कवरेज के लिए अभी देश की अधोसंरचना पर निर्भर करता है। हालांकि शिशु मृत्यु दर और पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर अमेरिका में काफी अधिक हैं।¹⁰

स्रोत : अल्पना सागर 2006

स्वास्थ्य सूचक : गरीबों तक पहुँच बनाने में असमर्थ

(भारत में जब हम स्वास्थ्य के क्षेत्र में अधोसंरचना और निवेश के मामलों में रुग्णता और मृत्यु दर के आंकड़ों की तुलना करते हैं तो इसकी तस्वीर काफी आकर्षक नहीं है। रुग्णता और मृत्यु दर या गतिरोध में आई आंशिक कमी ही एकमात्र उपलब्धि हैं। दरअसल, यह उपलब्धि खराब अभिलेखन और गलत रिपोर्टिंग के कारण से हुई नज़र आती है।

सरकार द्वारा कुष्ठ रोग के आंकड़ों पर गौर करें। इसमें बताया गया है कि कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों की अनुमानित संख्या संपूर्ण रूप से पहचान किए गए पीड़ितों की वास्तविक संख्या की तुलना में काफी कम है। इसकी वजह सरल है : इसके तहत चलाए गए कार्यक्रम में पीड़ितों के दो साल तक इलाज के बाद कार्यक्रम को रोक दिया गया। अधिकारिक अभिलेख के मुताबिक पीड़ितों को चंगा दिखा गया। इस प्रकार पीड़ितों की अनुमानित संख्या कम दिखाई गई। लेकिन इन दो वर्षों के इलाज से केवल रोग की गंभीरता कम हुई, इससे रोग की मौजूदगी कम नहीं हुई। पीड़ितों की त्रुटिपूर्ण संख्या इस अनुमान पर आधारित थीं कि भारत ने इस रोग के उन्मूलन में सफलता पा ली है। जबकि सच्चाई इससे काफी दूर है।

इसी तरह, डेंगू, निमोनिया, आंत्र ज्वर, वायरल हेपेटाइटिस और अन्य संक्रामक

10. अर्थेया वी.बी. और राव एम, 2006 : 'एजुकेशन एंड हेल्थ इन द ड्राफ्ट 11 प्लान एप्रोच पेपर : सोशल साइंटिस्ट, खंड 400-401, संख्या 9-10, पीपी 213

11. भारत सरकार, 1946 : 'रिपोर्ट ऑफ द हेल्थ सर्वे एंड डेवलपमेंट कमेटी' (मोरे कमेटी रिपोर्ट) खंड-दो, स्वास्थ्य मंत्रालय, प्रकाशन प्रबंधक नई दिल्ली, पीपी-17

रोगों के मामले कम नहीं हुए। (तालिका 5ए, 5बी, 5सी)। अगर हम संपूर्ण मृत्यु दर, प्रजनन दर और अप्रत्याशित काफी आकर्षक नहीं है। रुग्णता और मृत्यु दर या गतिरोध में आई आंशिक कम ही एकमात्र उपलब्धि है। दरअसल, यह उपलब्धि खराब अभिलेखन और गलत रिपोर्टिंग के कारण से हुई नज़र आती हैं।

सरकार द्वारा कुष्ठ रोग के आंकड़ों पर गौर करें। इसमें बताया गया है कि कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों की अनुमानित संख्या संपूर्ण रूप से पहचान किए गए पीड़ितों की अनुमानित संख्या संपूर्ण रूप से पहचान किए गए पीड़ितों की वास्तविक संख्या की तुलना में काफी कम है। इसकी वजह सरल है : इसके तहत चलाए गए कार्यक्रम में पीड़ितों के दो साल तक इलाज के बाद कार्यक्रम को रोक दिया गया। अधिकारिक अभिलेख के मुताबिक पीड़ितों को चंगा दिखाया गया। इस प्रकार पीड़ितों की अनुमानित संख्या कम दिखाई गई। लेकिन दो वर्षों के इलाज से केवल रोग की गंभीरता कम हुई, इससे रोग की मौजूदगी कम नहीं हुई। पीड़ितों की त्रुटिपूर्ण संख्या इस अनुमान पर आधारित थीं कि भारत ने इस रोग के उन्मूलन में सफलता पा ली है। जबकि सच्चाई इससे काफी दूर है।

इसी तरह,

डेंगू, निमोनिया, आंत्र, ज्वर, वायरल हेपेटाइटिस और अन्य संक्रामक रोगों के मामले कम नहीं हुए (तालिका 5ए, 5बी, 5सी)। अगर हम संपूर्ण मृत्यु दर, प्रजनन दर और अप्रत्याशित आयु सूचकों (तालिका 6) की बात करें तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रति एक हजार जन्म में से 60 आईएमआर 16 में से सिर्फ पांच राज्यों में देखी जाती हैं जिन पर उपयुक्त आंकड़ों के बगैर अध्ययन किया गया है। मातृत्व मृत्यु दर अभी भी काफी ज्यादा है और इस पर अनुमानों या आबादी के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से आंकड़े जुटाने की प्रक्रिया जारी है। इसी प्रकार, सिर्फ चार राज्यों में ही प्रजनन दर 2.5 प्रतिशत है। इसके अलावा केरल और पंजाब को छोड़कर सभी राज्यों में तीन साल से कम आयु के 35 से 55 प्रतिशत बच्चे कम वजन के या कमजोर हैं।

तालिका 5 ए : टीकाकरण से काबू पाए जाने वाले रोगों के कारण रुग्णता और मृत्यु दर की रिपोर्ट

टीकाकरण से काबू पाए जाने वाले रोग

	1999	2004	
डिप्थेरिया	मामले	4216	8465
	मौतें	85	126
गंभीर पोलियो	मामले	899	218
	मौतें	11	4
नवजात में टिटनेस	मामले	2792	1087
	मौतें	385	141
अन्य में टिटनेस	मामले	1309	3743
	मौतें	1014	474
कुकुर खांसी	मामले	32939	32786
	मौतें	22	19
चेचक	मामले	51001	51456
	मौतें	261	140
ए.आर.आई.	मामले	16730509	25571757
	मौतें	3686	5223

स्रोत : हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया, 1998 और 2004

तालिका 5बी : गंभीर संक्रामक रोगों के कारण रुग्णता और मृत्यु
मलेरिया

डायरिया

कालाजार जे.ई.

डेंगु

कृष्ण

स्रोत : हेल्थ इन्फॉर्मेशन ऑफ इंडिया, 2004

तालिका 5सी : अन्य संक्रामक बीमारियों के कारण ज्ञात रुग्णता और मृत्यु
आंत्र ज्वार

वायल हेपेटाइटिस

सिफलिस

सूजाक संबंधी संक्रमण

मेनिंगोकोकल

मेनिनजाइटिस

एड्स

स्रोत : हेल्थ इंफॉर्मेशन ऑफ इंडिया 1999 और 2004

तालिका : 6 भारत और भारत के चुनिंदा राज्यों में स्वास्थ्य स्थिति के नतीजे

क्षेत्र	जन्म	एमएमआर	आईएमआर
पांच साल से कम उम्र में मृत्यु दर (98-99)			कुल प्रजनन
दर 1997 (प्रतिशत)	कम वजन वाले बच्चे, 98-99	प्रतिशत	

आंध्र प्रदेश

असम

बिहार

गुजरात

हरियाणा

कर्नाटक

केरल

मध्य प्रदेश

महाराष्ट्र

उड़ीसा

पंजाब

राजस्थान

तमिलनाडु

उत्तर प्रदेश

पश्चिम बंगाल

भारत

स्रोत : बेटर इंडिया सिस्टम्स फॉर इंडियोज पूअर, वर्ल्ड बैंक 2002

एनसीएमएच बैकग्राउंड पेपर्स – बर्डन ऑफ डिजीज इन इंडिया पीपी-88

निराशाजनक प्रदर्शन

संक्षिप्त सर्वेक्षण से जाहिर होता है कि स्वास्थ्य सूचकों के मामले में उपलब्धियां स्वास्थ्य की मौजूदा स्थिति और गरीबों तक पहुँच के साथ-साथ स्वास्थ्य अधोसंरचना निर्माण की दिशा में उम्मीदन से काफी कम रही है। साथ ही जो कुछ उपलब्धि मिली वह धीरे-धीरे हुए संपूर्ण सामाजिक-आर्थिक विकास के कारण ही मिली जिसने लोगों के जीवन को संवारा। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से प्रभावी तरीके से निपटने में स्वास्थ्य सेवाओं की अक्षमता को

समझने के लिए हमें योजना आयोग के ऐतिहासिक चलन को समझने की जरूरत है।

स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की शुरुआती उम्मीद और प्रतिबद्धता वर्ष 1946 में भोरे समिति द्वारा तैयार पहली विस्तृत रिपोर्ट में देखी गई। इसमें व्यक्ति विशेष की भुगतान क्षमता का भेदभाव किए बिना सभी के लिए स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करने का वादा किया गया। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि गरीब और पर्यावरण स्थितियां जन स्वास्थ्य प्रणालियों के बेहतर संभावित परिणाम पाने के बाधाक हैं। रिपोर्ट में एकीकृत स्वास्थ्य सेवा संचालित करने के लिए हरेक जिले में एक तीन स्तरीय पिरामिड ढांचा बनाने का विचार किया गया।¹¹ इस ढांचे को शहरों में मौजूद मेडिकल कॉलेजों तथा विशेष अस्पतालों की मदद से मजबूत किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय रोग नियंत्रण कार्यक्रमों की शुरुआत भी परिवार नियोजन और पोषाहार कार्यक्रमों को महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया गया।

कमजोर शुरुआत : वित्तीय संकट, शहरी पक्षपात, बल प्रयोग

दस वर्षों की समीक्षा के बाद स्वास्थ्य क्षेत्र में वित्तीय कार्यक्रमों की समस्याएं उजागर हुईं। इसमें स्वास्थ्य कर या विभिन्न भुगतान प्रणाली लागू करने या राष्ट्रीय बीमा प्रणाली बनाने का सुझाव दिया गया लेकिन इन पर ध्यान नहीं दिया गया।¹² इसके विपरीत पंचवर्षीय योजनाओं के तहत स्वास्थ्य क्षेत्र में आबंटन कम कर दिया गया और ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा की कमीत पर शहरी क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

परिवार नियोजन कार्यक्रम और मलेरिया, कुष्ठ और फाइलेरिया जैसे अन्य शीर्ष कार्यक्रमों पर जोर दिए जाने से सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं की अनदेखी होने लगी। सन् 1970 के दशक में जब शुरुआती असर बनाने में ये कार्यक्रम विफल होते नज़र आने लगे तो तंत्र को फिर से व्यवस्थित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। हालांकि इससे सिर्फ आंशिक एकता, परिवार नियोजन कार्यक्रम का वर्चस्व और पोषण, साफ-सफाई और पेयजल की उपलब्धता में सुधार लाने के लिए सहायक कार्यक्रमों की उपेक्षा ही नज़र आया। इन सब वजहों से

12. भारत सरकार, 1962 : 'रिपोर्ट ऑफ द हेल्थ सर्वे एंड प्लानिंग कमेटी' (मुदलैयर कमेटी रिपोर्ट), खंड दो, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, प्रकाशन प्रबंधक, पीपी, 78-80)

सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार आने के बजाए यह कमजोर ही होता गया।

इस कार्य में अन्य अड़चनें भी हैं। सन् 1970 के आखिर में बंध्याकरण जारी रखने, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता कार्यक्रम, एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) के जरिए तथा अल्मा अता घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए स्वास्थ्य क्षेत्र को फिर से पटरी पर लाने का प्रयास किया गया, जिसमें सरकार ने विश्व के सभी लोगों की स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के लिए सभी लोगों की स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के लिए सभी लोगों की स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के लिए सभी सरकारों, सभी स्वास्थ्य एवं विकास कार्यकर्ताओं तथा विश्व के सभी लोगों की स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य में सुधार के लिए सभी सरकारों, सभी स्वास्थ्य एवं विकास कार्यकर्ताओं तथा विश्व समुदाय द्वारा आवश्यक कदम उठाने की जरूरत पर जोर दिया। हालांकि शहरी, उच्च तकनीक सेवाओं की स्थिति काफी मजबूत हुई और प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा को उन कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करते हुए चुनिंदा स्वास्थ्य सेवा परिणत कर दिया गया जिनमें चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध थी।

किसी और नाम से परिवार नियोजन

जन-स्वास्थ्य क्षेत्र में आधारभूत संरचना की समस्याएं और महारी विज्ञान के नजरिए से उचित प्राथमिकताओं की पहचान की समस्याएं 1980 के दशक के दौरान भी कायम रहीं। (महामारी विज्ञान क्षेत्र स्तरीय समस्याओं के बारे में जानने के लिए जनसंख्या अध्ययन से संबंधित है।) छठी योजना में स्वास्थ्य आधारभूत संरचना का बड़े पैमाने पर विस्तार किया गया। इसमें एक लाख की आबादी पर एक सीएचसी स्थापित किए जाने पर विचार किया गया।

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (पीएचसी) का सेवा दायरा पहले की एक लाख आबादी से घटाकर 30 हजार तक की आबादी के लिए कर दिया गया।

छठी योजना में गैर-सरकारी संगठनों तथा निजी क्षेत्र प्रदाताओं को चिकित्सा केंद्र खोलने का भी अवसर प्रदान किया।¹³ सबसे अधिक ध्यान मातृत्व और बाल स्वास्थ्य सेवाओं पर दिया गया जो परिवार नियोजन लक्ष्यों की प्राप्ति

13. भारत सरकार, 1981 : 'छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 : योजना आयोग, नई दिल्ली पीपी 366-387

का पुरस्कार था जिसे अब 'बाल रक्षा और सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम' कहा जाता है। सन् 1990 के दशक में नया प्रजनन और शिशु स्वास्थ्य (आर सीएच) सेवाएं रखा गया जो उसी पुराने परिवार कल्याण कार्यक्रम की नई रणनीति थी।

स्वास्थ्य सेवा के निजीकरण की ओर मध्यवर्ग का आकर्षण

तेजी से बढ़ते मध्य वर्ग और इससे जुड़े पेशेवरों की बढ़ती महत्वकांक्षा ने सरकार पर अंतरराष्ट्रीय मानदंडों वाले स्वास्थ्य सेवा और तृतीय स्वास्थ्य सेवा अस्पतालों के प्रावधान में निजी क्षेत्रों की भागीदारी की मांग को लेकर दबाव डालना शुरू कर दिया। मध्य वर्ग ने सभी शहरी स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था खुद कर ली जो बुनियादी जन स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था खुद कर ली। जो बुनियादी जन स्वास्थ्य सेवाओं का हिस्सा थी। गरीब और निम्न मध्यम आय वर्ग ही ऐसा था जिन्हें स्वास्थ्य के लिए जीवन की बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव था। एक प्रभावी, कारगर बुनियादी सेवा के बारे में कोई जानकारी नहीं होने के कारण वे निजीकरण के इस चलन का विरोध नहीं कर सके।

निर्विरोध रूप से मध्य वर्ग के सामाजिक दबाव ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में निजीकरण और इसके बाजार पहुंच बनाने की मांग तेज कर दी। सरकार की राजनीतिक और बाध्यताओं की वजह से उसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष और विश्व बैंक जैसी वैश्विक संस्थाओं से विकास के नाम पर छोटे से लेकर बड़े-बड़े अंतरराष्ट्रीय सहायता लेने के लिए मजबूर होना पड़ा और इन वैश्विक संस्थाओं द्वारा थोपी गई शर्तें स्वीकारते हुए अपनी आर्थिक नीतियां बदलनी पड़ीं।

स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार : स्वास्थ्य सेवा से लोगों को वंचित करना

बहुतराष्ट्रीय कंपनियों (एमएनसी) के लिए काम करने वाली अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के लिए मध्य वर्ग की महत्वकांक्षा और सरकार की बाध्यता दोनों की साझा ताकतें एक सुविधाजनक साधन बन गईं और इसकी मदद से ये

14. कादिर आई. 2000 : हेल्थ केयर सिस्टम इन ट्रांजिशन श्री इंडिया पार्ट वन, द इंडियन एक्सीपरिअंस' जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ मेडिसिन, खंड 22, संख्या-1, पीपी 25-32

एजेंसियां स्वास्थ्य क्षेत्र के बाजार में टीकों, दवाओं और उपकरणों के कारोबार का अपना एजेंडा क्रियान्वित करने लगीं। भारत ने भी ढांचागत समायोजन नीतियों (एसएपी) के हिस्से के तौर पर स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार (एचएसआर) का अपना संपूर्ण दायरा पहले अनौपचारिक रूप से और फिर 1990 में औपचारिक रूप से खोल दिया। स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार, स्वास्थ्य क्षेत्र में निवेश में कटौती, निजी क्षेत्र के लिए चिकित्सा केंद्र खोलने, निजी निवेश के तहत सार्वजनिक क्षेत्र के स्वास्थ्य सेवा संस्थान खोलने, सार्वजनिक संस्थानों में मरीजों से शुल्क लेने (यह शुल्क, दाखिला शुल्क पैथॉलॉजिकल जांच और खुराक के अलावा अन्य तरह की सुविधाओं से संबंधित हैं और अलग-अलग राज्यों में इसे वसूलने का तरीका काफी अलग है।), स्वास्थ्यकर्मियों की अस्थायी नियुक्ति (इन कर्मचारियों को सभी तरह के लाभ पाने वाले अस्थायी कर्मचारियों से अलग तदर्थ आधार पर नियुक्त किया जाता है) और स्वास्थ्य सेवाओं पर तकनीक केंद्रित मुद्दों से जुड़ा मसला है।¹⁴

सुधारों का असर : गरीबों को खर्च करने लायक बनाना

इन तथाकथित सुधारों का मकसद बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं के लिए काफी बड़ा था। ये मकसद न सिर्फ निवेश में कटौती से पैदा हुए बल्कि उन ढांचागत बदलावों के लिए भी थे जिन्हें शुरू किया गया था। इन सबने स्वास्थ्य के लिए आवश्यक अन्य प्रमुख कल्याणकारी इनपुट को कमजोर किया जिनमें सबसे गंभीर तथ्य रहे :

(ए) खाद्य सुरक्षा प्रणाली की कमजोरी, बेरोजगारी और आजीविका में नुकसान की वजह से स्वास्थ्य योजना तक क्षेत्रीय पहुंच बनाने में मुकिशले आई;

(बी) प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा को घटाकर प्राथमिक स्तर तक कर दिया गया जिससे द्वितीय और तृतीय स्तर के स्वास्थ्य सुविधा संस्थानों की समर्थक जिम्मेदारी हटा दी गई;

(सी) प्राथमिक स्तर की सुविधा को एक बार फिर क्लिकल और इसके घटक विश्व बैंक द्वारा परिभाषित किए गए जिस वजह से लोगों में महाकारी विज्ञान से जुड़ी जरूरतें पूरी करने की दिशा में बहुत कम किया जा सका।¹⁵

15. विश्व बैंक, 1993 : वर्ल्ड डेवपलपमेंट : इन्वेस्टमेंट न हेल्थ', वाशिंगटन डीसी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पीपी-1-17

(डी) प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिए जाने के कारण महिलाएं जनसंख्या नियंत्रण की एजेसी बना दी गईं। इस तरह जन्म दर पर नियंत्रण और प्रसव के दौरान प्रजनन तकनीकों में काफी तेजी आई;

(ई) चिकित्सा सुविधा निजी क्षेत्रों के हाथों में पहुँच गई जिसमें मानिट्रिंग, डाटा पूलिंग और मानक उपचार के लिए परामर्श आधारित प्रक्रियाएं अपनाने की बाध्यता नहीं थी;

(एफ) चिकित्सा खर्च और गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा में वृद्धि के कारण सेवाएं पाने की कीमत में भिन्नता थी क्योंकि निजी क्षेत्रों में किए जाने वाले खर्च पर निगरानी रखने की औपचारिक तंत्र का अभाव था, जिसका कारण निजी क्षेत्र की अपनी क्षमता अथवा सरकार की लापरवाही रही;

(जी) परिवार कल्याण और एड्स नियंत्रण कार्यक्रमों को स्वास्थ्य योजना में खासी अहमियत दी गई जो अब दाताओं की प्राथमिकताओं से निर्देशित होते हैं;

(एच) कुष्ठ रोग, तपेदिक और फाइलेरिया नियंत्रण कार्यक्रमों को एकीकृत करने के बाजए अलग-अलग रखा गया। प्रत्येक कार्यक्रम में चिकित्सा पर खास ध्यान दिया गया लेकिन सामाजिक-आर्थिक महत्वों की अनदेखी की गई। तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम में अच्छे नतीजें पाने के लिए सिर्फ उन्हीं लोगों को पंजीकृत किया गया जिनके पास स्थायी पते थे और जो नियमित आते रहते थे। इससे उन लोगों को वंचित रखा गया जिन्हें सबसे ज्यादा मदद की जरूरत थी यानि – प्रवासी दिहाड़ी मजदूरी। इनमें से महज 50 प्रतिशत लोगों को ही उपचार सुविधा प्रदान की गई;

(आई) सेवाओं का विकेंद्रीकरण लागू किया और कई स्वतंत्र प्रदाताओं द्वारा सेवाएं प्रदान की जाने लगी तथा केंद्रीय प्रशासन के प्रति जवाबदेह और जिम्मेदार किसी प्रतिनिधिमंडल को इसमें नहीं रखा गया;

16. अंतरराष्ट्रीय विकास विभाग भारत, 1999 : 'एन इन्फॉर्मड एप्रोच : अप्लाइंग रिसर्च टू आरएनटीसीपी : मेन फाइंडिंग्स', अनपब्लिशड मोनोग्राफ, नई दिल्ली

(जे) राष्ट्रीय संस्थानों की स्वायत्ता छिन गई और वे उन दाताओं पर निर्भर हो गई उन्होंने उनकी प्राथमिकताओं को विकृत कर दिया।

(क) सरकारी – निजी क्षेत्रों की भागीदारी को सार्वजनिक क्षेत्र की अक्षमता और निजी क्षेत्र में सामाजिक दायित्व की कमी के जवाब के रूप में देखा गया और इस भागीदारी को पूरे देश में प्रोत्साहन मिला। तथाकथित सुधारों के प्रभाव में जहां एक ओर योजना की परियोजना पद्धति निर्धारित करने के लिए अल्प संसाधनों से लैस और वैतनिक परामर्शदाताओं का समावेश किया गया वहीं दूसरी ओर इसमें नियोजकों और प्रदाताओं की विवधिता देखी गई। स्वास्थ्य सेवाओं में कुशलता और निष्पक्षता लाने के लिए किए गए इन सुधारों से दोनों में से कुछ भी हासिल नहीं हो पाया।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन : बीमार स्वास्थ्य क्षेत्र की दावा

सरकार की भी इन प्रवृत्तियों को लेकर इतनी गंभीर रही है। सन् 2005 में उसने गरीबों को लक्ष्य करने और उन्हें राहत प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएसएम) शुरू किया। एनआरएचएम के मुख्य घटक हैं :

– ग्रामीण स्तर पर अनिवार्य स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करने के लिए अधिकृत सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (आशा) को प्रशिक्षित करना और एनएम और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता (आईसीडीएस के कार्यकर्ता) के अधीन काम करना; एनएम को इस्तेमाल के लिए और जहां जरूरत हो 10 हजार रुपए का कोष उपलब्ध कराना,

– उपकेंद्रों को मजबूत बनाना।

– सभी सीएचसी को मजबूत बनाना और उन्हें पहले रेफरल अस्पतालों में परिवर्तित करना;

– कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए अतिरिक्त जन-स्वास्थ्य और स्वास्थ्य प्रबंधन कर्मचारियों की नियुक्ति करना;

– सेवाओं के प्रत्येक स्तर के लिए राष्ट्रीय जन स्वास्थ्य मानकों को विकसित करना।

पीएचसी के विशेषज्ञों और डॉक्टरों की वांछित संख्या को पूरा करने के लिए उन्हें सीएचसी के लिए तैयार करना चाहिए। पीएचसी में सेवाएं प्रदान करने

के लिए वैकल्पिक व्यवस्था के लिए रखे गए डॉक्टरों को नियुक्ति किया जाना चाहिए।¹⁷ शहरी इलाकों में सेवाएं उपलब्ध करना सुनिश्चित कराने के लिए निजी क्षेत्रों के प्रवेश को हर स्तर पर बढ़ावा दिया जाता है। हालांकि उपभोक्ताओं के लिए इसकी कीमत चुकाने संबंधी कोई नियम कायदा नहीं बनाया गया है।

नियोजनकों के लिए पीएचसी की गंभीरता महत्वपूर्ण नहीं है

क्या इसका निहितार्थ सभी महत्वपूर्ण पीएचसी के कार्य संचालन के लिए हैं? वार्षिक आबंटन सरकारी मानसिकता का संकेत देता है :

— वर्ष 2005 से 60.75.17 करोड़ रुपए और 07190.37 करोड़ रुपए का संशोधित वार्षिक आबंटन और 9839.00 करोड़ रुपए का बजटीय अंबंटन किया गया। हालांकि जन स्वास्थ्य सेवाओं की डिलेवरी और मानिटरिंग के लिए प्रमुख परिधीय संस्थान पीएचसी के संसाधन अपर्याप्त ही रहे जबकि इन संस्थानों को सीएचसी और उपकेंद्रों के बीच गंभीरता से जोड़कर रखा गया :

— इस स्तर पर डॉक्टर की घटी संख्या का अर्थ है कि आशा और एनएनएम के कार्यों के लिए निम्न पेशेवर समर्थन मिलता है और प्राथमिक स्तर पर ठीक होने वाली सामान्य बीमारियों के लिए अच्छी सेवाएं नहीं हैं;

— सामाजिक स्तर पर गंभीर मामलों का स्थानांतरण, पोषण सेवाएं और एनीमिया नियंत्रण अभी एक गंभीर समस्याएं बनी हुई हैं। इस तरह सीएचसी का बोझ बढ़ जाता है और प्रजनक और शिशु के स्वास्थ्य पर से इसका फोकस हट जाता है जिस वजह से जनसंख्या की सामान्य स्वास्थ्य जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं;

— पीएचसी के कुछ बुनियादी कार्यक्रम के संचालन के लिए आयुष प्रैक्टिशनरों का इस्तेमाल भी उनकी प्रशिक्षण पृष्ठभूमि, उनकी पेशेवर दक्षता का उचित इस्तेमाल और अनुपलब्ध एलोपैथिक प्रैक्टिशनरों के बदले लोगों को खर्च करने का विकल्प देने को लेकर कुछ बुनियादी सवाल उठाते हैं।

17. दासगुप्ता, आर. और कादिर, आई 2006 : 'द नेशनल रूरल हेल्थ मिशन' (एनएचआरएम) : ए क्रिटिकल ओवर व्यु', इंडियन जनरल ऑफ पब्लिक हेल्थ, वॉल्यूम-49, नवम्बर 3, पीपी 138-40

तो क्या इस मुद्दे और भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली की समस्याओं का हल एनआरएचएम हैं? क्या सुधार के लिए शुरू की गई मुहिमों को, सार्वजनिक क्षेत्रों को एक बार फिर पीछे रखते हुए निजी स्वास्थ्य सेवाएं जारी रखने की इजाजत दी जाए? क्यों सार्वजनिक-निजी क्षेत्र की भागीदारी इस दुविधा को मिटा सकती हैं? इन सवालों को हल ढूंढने के लिए हमें स्वास्थ्य की दिशा में सरकार के महत्व और इसकी जिम्मेदारी को दृष्टिगत करते हुए कुछ अहम पहलुओं की जांच करनी चाहिए। यह जांच सिर्फ वित्तीय राशि और सुविधा प्रदान करने वाली एक एजेंसी के तौर पर नहीं बल्कि एक ऐसी एजेंसी के रूप में होनी चाहिए जो संपूर्ण प्रणाली में विसंगतियां कम करना सुनिश्चित करने की सुविधा प्रदान करती हो, मानक स्थापित करती हो और व्यवस्थित हो।

स्वास्थ्य सेवाओं में चुनौतियां : सुधारना 'सुधारको' / गरीबों को प्राथमिकता देना

पहुंच और सर्वव्यापकता, सब्सिडी, कार्यकुशलता और गुणवत्ता तथा लिंगा आधारित न्याय जैसे पहलू स्वास्थ्य सेवाओं में समानता स्तर का निर्धारण करते हैं। इन सबके लिए स्वज्ञस्थ में निवेश भले ही स्वास्थ्य के कारोबार को मजबूत करते हों। (सरकार पर राष्ट्रीय अनिवार्य सेवाओं के लिए खरीद सहायता स्वीकारने और दवाओं तथा उपकरणों की खरीद के लिए दबाव डालते हुए) लेकिन इसमें गरीबों के स्वास्थ्य को अनिवार्य नहीं समझा जाता है। असली सुधार तभी आ पाएगा जब सरकार अपने शरीर पक्षपातपूर्ण रवैए, ढांचागत अक्षमताओं तकनीकी केंद्रित, गलत तरीके से श्रम शक्ति विकसित करने की नीति और खराब प्रबंधन से इस विशाल तंत्र को मुक्त रखेगी।

स्वास्थ्य को समझाने के लिए इसे एक संपूर्ण ढांचे में रखा जाता है, जैसा कि पहले जिक्र किया गया है, ताकि हम ऐसा कर सकें और मैक्रोइकॉनामिक्स¹⁸ पर बने आयोग द्वारा प्रस्तावित ढांचे में इसे न रखा गया हो जहां स्वास्थ्य निवेश होते तो हैं लेकिन एसएपी के ढांचे में ही। इसका मतलब यह है कि गरीबों

18. विश्व स्वास्थ्य सगठन (2001) : मैक्रोइकॉनामिक्स एंड हेल्थ : इन्वेस्टिंग इन हेल्थ फॉर इकॉनामिक डेवलपमेंट रिपोर्ट ऑफ द कमीशन ऑन मैक्रोइकॉनामिक्स एंड हेल्थ, डब्ल्यूएचओ, जिनेवा, पीपी 11-21

के स्वास्थ्य के लिए निवेश उन्हें उत्पादनशील शक्तियों का हिस्सा बनाए बिना और उनका आत्मसम्मान, कल्याण और उत्पादनशीलता बढ़ाए बिना नहीं होना चाहिए।

इन सबके बिना स्वास्थ्य में निवेश भले ही स्वास्थ्य के कारोबार को मजबूत करते हों (सरकार पर राष्ट्रीय अनिवार्य सेवाओं के लिए सहायता स्वीकारने और दवाओं तथा उपकरणों की खरीद के लिए दबाव डालते हुए) लेकिन इसमें गरीबों के स्वास्थ्य को अनिवार्य नहीं समझा जाता है। सेवाओं का निजीकरण और सरकार की नीतियों में बदलाव को इस आयोग ने 'सुधार' के रूप में पेश किया है जबकि इन नीतियों से समझौता वास्तव में कठोर और गरीब अर्थव्यवस्था विरोधी नीतियां अपनाने के लिए किया गया था। विशालकाय तंत्रके जरूरी वास्तविक सुधार को इसके शहरी पक्षपात से मुक्त करने के लिए प्रबंधकीय और ढांचागत अक्षमताओं, तकनीकी केंद्रित व्यवस्था और खराब तरीके से विकसित श्रमशक्ति नीति को दरकिनार किया गया।

यहां तक कि स्वास्थ्य के लिए सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) की गरीबों के लिए प्रासंगिकता पर भी उठाए जा चुके हैं¹⁹, जो एसएपी के परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के लिए स्वास्थ्य के कारोबार के विस्तार के तौर पर काफी काम करती हैं।

एमडीजी ने विकास के लिए ऐसा सुझाव दिया जिसमें कल्याणकारी धारणा कटौती की बात थी जो ढांचागत समायोजन के तकनीकी केंद्रित ढांचे में ही संभव है। इसमें सरकार के बजाए लोगों की जिम्मेदारी पर जोर दिया और उनकी रुझानता के लिए उन्हें ही दोष ठहराया गया। इस प्रकार सुधारात्मक कदमों का चलन सामाजिक और सामूहिक नजरिए से कम हो गया और व्यक्तिगत कार्य की दृष्टि से बढ़ गया। इस वजह से स्वास्थ्य के क्षेत्र में कल्याणकारी सेवाओं और निवेश के प्रावधान के निजीकरण और अनियमितता को बढ़ावा

19. ग्वात्किन. आर. डेविडसन (2005) 'हाउ मच वुड द पूअर पीपुल गेन फ्रॉम फास्टर प्रोग्रेस टूवर्ड्स द मिलेनेयम डेवलपमेंट गोल फॉर हेल्थ?' द लैंसेट खंड 365, पीपी 813-817
20. एनएसएसओ, 2006 : 'मोर्बिलिटी, हेल्थ केअर एंड द कंडीशन ऑफ द एण्ड, एनएसएस 60वां राउंड, जनवरी-जून 2004' सांख्यिकी और योजना कार्यान्वयन मंत्रालय, नई दिल्ली
21. पीटर्स डेविड एच, यसबेक, ए. शर्मा, आर.आर. रमणा, जी.एन.वी. प्रितचेत्त, एल.एच. और

मिला और सरकार अव्यवस्थित होने लगी।

इस तरह ग़रीबों को निशाना बनाया जाने लगा और ग़रीबों या किसी ऐसे व्यक्ति को सेवा प्रदान करने के लिए तकनीकी के ख़रीददार के रूप में सरकार का बेहतरीन इस्तोमल किया गया, जो व्यक्ति निजी बीमा कंपनियों में ग़रीबों के लिए तीसरी पार्टी भुगतान करता था। दूसरे शब्दों में एमडीजी चिकित्सा कारोबार के विस्तार के लिए ग़रीबों का इस्तेमाल करने लगी और कई तकनीकी मामलों में तो यह ग़रीबों के सर्वश्रेष्ठ हित के लिए आगे भी नहीं बढ़ती है।

सेवाओं तक पहुँच : निजीकरण द्वारा मूल्य निर्धारित करना

सन् 1986-87 के बाद से लिए गए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के तीन दौर के आंकड़े दर्शाते हैं कि निजी क्षेत्र की सेवाओं का उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2004 के एनएसएस²⁰ के मुताबिक, अस्पतालों में भर्ती नहीं होने जैसी बीमारियों के लिए प्रति एक हजार में से एक 22 लोग सरकारी सुविधाओं का इस्तेमाल करते हैं जबकि प्रति एक हजार में से 78 व्यक्ति निजी क्षेत्र का इस्तेमाल करते हैं। शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ो 19 और 81 प्रतिशत का है।

इससे तत्काल जो निष्कर्ष निकलता है, वह इस प्रकार है :

- लोग निजी क्षेत्र को पसंद करते हैं।
- निजी क्षेत्र ज्यादा प्रभावी है।

हालांकि गहन विश्लेषण से एक अलग ही तस्वीर उभरती है। काफी उच्च रहन-सहन वाले बहुत कम लोगों की आबादी के प्रति व्यक्ति मासिक वाले समूहों (एमपीसीआई) के बीच सूक्ष्म गणना की जाए तो संपूर्ण और औसत आंकड़े इस सच्चाई को झुठला देंगे। लिहाजा, संपूर्ण बीमारियों, जिनके लिए लोगों को मदद की जरूरत है, पर ध्यान देने के बदले जब हम अस्पतालों में भर्ती होने की अनिवार्यता वाली सिर्फ गंभीर बीमारियों पर गौर तरे हैं तो एक बड़ी आबादी पर गौर करते हैं तो एक बड़ी आबादी को सरकारी सेवाओं का इस्तोमल करते देखा जा सकता है — यानी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रति हजार व्यक्ति में से 42 और 38 व्यक्ति।

इस अनुपात को जब एमपीसीई वर्गों के आधार पर देखा जाता है तो इससे काफी अलग तस्वीर उभरती है :

- न्यूनतम मासिक प्रति व्यक्ति आय (एमपीसीई) समूह में ग्रामीण नमूने के आधार पर 20 प्रतिशत व्यक्ति यानि 300-340 रुपए तक की आय वाले व्यक्तियों में से 55.6 प्रतिशत लोग सरकारी अस्पतालों का इस्तेमाल करते हैं जहां देय शुल्क वाले बिस्तरों का इस्तेमाल नगण्य रहा (5 प्रतिशत) तालिक 7 ए);
 - इस वर्ग में निजी अस्पताल का इस्तेमाल करने वाले ज्यादातर लोग निःशुल्क बिस्तरों या देय शुल्क वाले जनरल वार्ड पर निर्भर करते हैं;
 - इसके विपरीत, अधिकतम एमपीसीई समूहों में नमूना सर्वेक्षण का 16 प्रतिशत यानि 775-950 रुपये खर्च करनेवाले 70.8 प्रतिशत लोग निजी अस्पतालों का इस्तेमाल करते हैं;
 - सरकारी सेवाओं का इस्तेमाल करने के मामले में न्यूनतम एमपीसीई समूहों की तरह ही शहरी आबादी की कहानी ज्यादा अलग नहीं है लेकिन उच्चतर एमपीसीई समूहों में यहाँ निजी अस्पतालों का इस्तेमाल करनेवाले 81 प्रतिशत रहे (तालिक + 7 बी);
 - शुरूआती सर्वेक्षण दौर में सरकारी अस्पतालों का इस्तेमाल करने वाले गरीब 60 प्रतिशत थे। प्रतिरक्षण, प्रसव पूर्व और प्रसव के दौरान देखभाल जैसी सेवाओं के लिए गरीबी रेखा से नीचे बसर करनेवाले 60-94 प्रतिशत लोग सरकारी सुविधाओं का ही लाभ उठतो हैं।²¹
- यह सर्वविदित है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बीमारी ऋणग्रस्तता का बड़ा कारण है जहां बहुत कम लोग ही उपचार का झंझट उठाना चाहते हैं। एनएसएसओ आंकड़े²² का 52वां दौर दर्शाता है कि न्यूनतम और उच्चतम ग्रामीण एमपीसीई इलाज से वंचित लोगों के अनुपात में एक बड़ा अंतर है;

वैगस्टॉफ, ए (2002) : 'बेटर हेल्थ सिस्टम्स फॉर इंडियाज पूअर : फाइंडिंग एनालिसिस एंड ऑप्शांस', विश्व बैंक, वाशिंगटन डी.सी.पी.पी. 133-149

22. भारत सरकार, सांख्यिकी और योजना कार्यान्वयन मंत्रालय, 2000 : 'नोट ऑन मोर्बिडिटी एंड ट्रीटमेंट ऑफ एलमेंट्स : एनएसएस 52 राउंड (जुलाई-जून 1996)' सर्वेक्षण अंक 23, संख्या 3, जनवरी-मार्च, पीपी 43-78

23. अश्रेया, वी.बी. एंड राव एम, 2006 : 'एजुकेशन एंड हेल्थ इन द ड्राफ्ट 11 प्लान अप्रोच

- न्यूनतम दशमक में 265 प्रतिशत मामलों का उपचार नहीं कराया गया।
- उच्चतम दशमक में इस तरह के सिर्फ 9 प्रतिशत मामले देखे गए।

उपचार नहीं कराने की प्रवृत्ति में तेजी

एनएसओ आंकड़े के साठवें दौर में एमपीसीई वर्गों में इस प्रवृत्ति के अनुपातों में तेजी देखी गई। इलाज नहीं कराने की मुख्य वजह आर्थिक तंगी ही है। क्योंकि लोगों के पास इलाज का खर्च वहन करने का साधन नहीं है और उपचार नहीं कराने की वजह के रूप में वित्तीय संकट दशमक में 10 प्रतिशत प्रतिक्रिया देनेवालों से बढ़कर 26 प्रतिशत लोगों में देखा गया।²³

सेवाओं की अनुपलब्धता उपचार सुविधाएं नहीं उठाने की दूसरी वजह रही। एनएसएस का 60वां दौर परिणात्मक सूक्ष्मता सुनिश्चित करता है कि गरीब अपने परिवार को बचाने के लिए सर्वोत्तम प्रयास करता है और इसके लिए अक्सर निजी उपचार सुविधा का भी सहारा लेता है लेकिन उनके इस इसतोमल को बड़े पैमाने पर जनरल वार्ड और निःशुल्क बिस्तरों तक सीमित कर दिया जाता है जिनकी संख्या काफी कम है। स्वज्ञस्थ सेवाओं के अलावा ग्रामीण्या और शहरी क्षेत्रों में विभिन्न एमपीसीई समूहों की आरसीएच सेवाओं तक पहुँच (तालिका 8 और 9) भी स्वास्थ्य सेवाओं जैसी पद्धति ही प्रदर्शित करती है:

- नमूने के मुताबिक, 27 प्रतिशत हिस्सेदारी वाले ग्रामीण क्षेत्रों में 300-340 रुपये के न्यूनतम एमपीसीई समूहों में लगभग 75 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं ने सर्वेक्षण के दौरान ही बच्चे को जनम दिया – जिनमें से 61 प्रतिशत महिलाओं ने घर पर ही 10 प्रतिशत ने सरकारी अस्पतालों में और पांच प्रतिशत महिलाओं ने निजी अस्पतालों में बच्चों को जनम दिया;
- सबसे सम्पन्न एमपीसीई समूहों (नमूने में 22 प्रतिशत हिस्सेदारी रखने वाले 615 रुपये और इससे ज्यादा कमाने वाले के मामले में सरकारी अस्पतालों में 11 प्रतिशत शिशुओं का जनम और घर पर 18 प्रतिशत जन्म देखा गया जबकि सर्वेक्षण के दौरान पहचान की गई सभी गर्भावस्थाओं की 60 प्रतिशत प्रसूतियों में से निजी अस्पतालों में प्रतिशत देखी गई।

पेपर सोशल साइंटिस्ट, अंक 34 संख्या 9-10, पीपी 21-34

24. महल, ए.सिंह., जे लांका, वी गंवर, ए और सेल्वारनाजा, वी 2002, हू बेनिफिट्स फ्रॉम

यह सामाजिक वर्गों के मामले में भी सच है जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की आबादी में इस तरह की सेवाएं हालिस करने का प्रतिशत कभी कम रहा। उनका निजी सेवाओं का इस्तेमाल आर्थिक रूप से और सामाजिक रूप से वंचित होने के कारण कहीं ज्यादा सीमित है।

इस तरह, निजी और सरकारी अस्पतालों में प्रति प्रसूति औसत खर्च उल्लेखनीय रूप से काफी अंतर भरा रहा जहां निजी अस्पतालों का खर्च तीन से चार गुना ज्यादा देखा गया। शहरी क्षेत्रों में घरों में प्रसूति के मामलों में कमी देखी गई और सरकारी अस्पतालों का इस्तेमाल ग्रामीण निम्न एमपीसीई समूहों की तुलना में तकरीबन तीन गुना ज्यादा देखा गया जबकि उच्च एमपीसीई समूह निजी अस्पतालों की सेवाओं का इस्तेमाल ज्यादा बार करते देखे गए।

उपभोक्ता शुल्क की राजनीति : अमीरों को सेवा दो, गरीबों को दूर रखो

निजीकरण के अलावा, गरीबों को सरकारी अस्पतालों से दूर रखने का एकमात्र सबसे बड़ा कारण शुल्क का निर्धारण है। उपभोक्ता शुल्क इस विचार के तहत शुरू किया गया था कि अगर मध्य वर्ग उपभोक्ता सरकारी अस्पतालों में प्रवेश के लिए उपभोक्ता शुल्क का भुगतान कर सकते हैं तो उन्हें निजी अस्पतालों में स्थानांतरित किया जा सकता है। इससे गरीबों के लिए सरकारी सेवाओं की उपलब्धता ज्यादा रहेगी।

(लेकिन इसकी उपयोगिता पद्धति बिल्कुल उलट स्थिति दर्शाती है। 52वें दौर के एनएसएस आंकड़े पर आधारित निःशुल्क बिस्तरों के इस्तेमाल पर किया गया अध्ययन दर्शाता है। 52वें दौर के एनएसएस आंकड़े पर आधारित निःशुल्क बिस्तरों के इस्तेमाल पर किया गया अध्ययन दर्शाता है कि सरकारी अस्पतालों द्वारा लिया जानेवाला ज्यादातर उपभोक्ता शुल्क अमीरों को लिया जाता है। जो उनकी सुविधाएं भी हड़प लेती हैं :

- सर्वोच्च 20 प्रतिशत एमपीसीसीई समूह दिन में मरीजों की सभी सुविधाओं का 49 प्रतिशत और दिन में निःशुल्क वार्ड का 46.5 प्रतिशत इस्तेमाल करता है:
- न्यूनतम 20 प्रतिशत एमपीसीसीई वर्ग दिन में मरीजों की सभी सुविधाओं का 26.6 प्रतिशत और दिन में निःशुल्क वार्ड का 27.8 प्रतिशत इस्तेमाल करता है।²⁴

दरअसल उपभोक्ता शुल्क गरीबों को सिर्फ उन सुविधाओं से भी वंचित रखने का हथियार है जो सुविधाएं कुछ हद तक उनकी पहुँच में हैं।

पब्लिक हेल्थ स्पेंडिंग इन इंडिया : रिजल्ट्स ऑफ ए बेनिफिट एनसिडेंस एनालिसिस फॉर इंडिया, एचसईओ 2005, नई दिल्ली एनसीआर

उपभोक्ता शुल्क के कई फायदे अधिकारिका तौर पर प्रदर्शित किए जाते हैं। इनमें यह फायदा दिखाया जाता है कि वे संसाधन जुटाने में योगदान कर रहे हैं। सच्चाई यह है कि वे बमुश्किल से ऐसा कर पाते हैं (तालिका 10)। कर्नाटक और पंजाब को छोड़कर कोई राज्य अस्पताल की लागत का तीन प्रतिशत से ज्यादा है संसाधन के लिए नहीं जुटा पाते हैं सिर्फ कर्नाटक और पंजाब में यह आंकड़ा 6.6 और 5.4 प्रतिशत से ज्यादा तालिका : 10 चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में कीमत की वसूली (गैर-ईएसआईएस) (प्रतिशत में)

राज्यों के नाम

15 बड़े राज्य

आंध्र प्रदेश

असम

बिहार

गुजरात

हरियाणा

कर्नाटक

केरल

मध्य प्रदेश

महाराष्ट्र

उड़ीसा

पंजाब

राजस्थान

तमिलनाडु

उत्तर प्रदेश

पश्चिम बंगाल

स्रोत : तुलसीधर 1993, पीपी 85-साइटेड इन वर्ल्ड बैंक 1997 फ्रॉम बारू रामा 'प्राइवेट हेल्थ केयर इन इंडिया' सेज 1998

इससे जाहिर होता है कि सरकारी अस्पतालों को दी गई सब्सिडी का लाभ बड़े पैमाने पर अमी हो उठाते हैं। इसलिए सरकार को न ही सिर्फ इसका खर्च वहन करना पड़ता है बल्कि वह यह भी महसूस करती है कि कड़ी निगरानी के अभाव में उपभोक्ता शुल्क गरीबों की पहुंच बनाने में मदद की बजाए उन्हें विकृत करता है।

सर्वप्रथम तो यह कि उपभोक्ता शुल्क के दौर पर वसूल की गई रकम की उपयोगिता को लेकर कोई स्थापित नियम-कानून नहीं है। कुछ राज्यों में यह रकम पूरी तरह या आंशिक रूप से राज्यों के खजाने में चली जाती है जबकि अन्य राज्यों में मुख्य चिकित्सा अधिकारी ही फैसला लेते हैं कि इस राशि का क्या किया जाए।

कुछ अन्य राज्यों में अस्पतालों पर बनी समिति का एक विशाल समूह की इस बारे में फैसला करता है इस नीति निर्धारण प्रक्रिया में किसी राज्य के अस्पताल कर्मचारियों के विभिन्न वर्गों का कोई प्रतिनिधि योगदान नहीं करता। मरीजों की देखभाल, निदान, आपातकालीन आवश्यकताओं, मरीज के सहयोगियों के लिए सुविधाओं और अस्पताल की साफ-सफाई व्यवस्था जैसी जरूरतों को या तो अस्पताल या इसके दफ्तरों की खूबसूरती में चार चांद लगाने के लिए अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। जो अस्पताल भारी भरकम रकम जुटाने में सफल होते हैं। वे अच्छी सेवाएं देने की स्थिति करम जुटाने में सफल होते हैं। वे अच्छी सेवाएं देने की स्थिति में होते हैं। अगर वे बिल्कुल पुननिर्वेश कर सकते हैं तो वे अपनी सेवाएं और सुधारते हैं।

यह प्रक्रिया पूरी तरह से उन संस्थानों को बाहर रखकर अपनाई जाती है जहां संसाधनों की कमी है, खराब वित्तीय स्थिति है और इसलिए जो भुगतान कर सकते हैं। वे इन संस्थानों में इलाज के लिए नहीं जाते। इस प्रकार जब तक साझा संस्थानों की प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती, खराब सेवाएं देने वाले संस्थानों का प्रदर्शन जारी रहेगा और उनकी उपभोक्ता शुल्क वसूली भी नगण्य ही रहेगी।

अस्पतालों की ज्यादा से भुगतान सेवाएं प्रदान करने के लिए प्राथमिकताओं को बदलने की प्रवृत्ति भी एक बड़ा मुद्दा बनी हुई है। लिहाजा प्रसूति, विकलांग और हृदय रोग विभाग बुनियादी स्तर की देखभाल इकाइयों की कीमत पर सेवाओं के प्रमुख घटक के रूप में उभर रहे हैं।

अलग-अलग उपभोक्ता शुल्क प्रणाली लागू करने का प्रयास भी देश के विशाल आकार और आर्थिक स्थितियों की पहचान में मुश्किलों को देखते हुए विफल रही रहा है। पहचान पत्र प्रणाली शुरू करने की कोशिश करने वाले ज्यादातर राज्य उन्हीं विशिष्ट लोगों तक उच्च स्तरीय सुविधाएं देने पर सीमित रह गए जो रिश्वत देते हैं और अपने सामाजिक नेटवर्क का इस्तेमाल करते हैं।

उपभोक्ता शुल्क की शुरुआत और आयकर में मध्यवर्ग को राहत, जब दोनों को एक साथ रखा जाता है तो स्वास्थ्य सुविधाओं का खर्च गरीबों पर लाद दिया जाता है। इससे पहले आर्थिक क्षमता के मुताबिक कर अदायगी प्रणाली पर आधारित सेवाएं सामूहिक स्तर पर लोगों को उनकी जरूरतों के मुताबिक प्रदान की जाती थी ताकि गरीबों को सब्सिडी दी जा सके। अब वे ज्यादा कमजोर हो गए हैं और उनसे और ज्यादा राशि

चुकाने की उम्मीद की जाने लगी है जबकि समाज के बाकी लोग आश्चर्यजनक रूप से इस सामाजिक जिम्मेदारी से मुक्त कर दिए जाते हैं।

संक्षेप में, गरीबों तक सेवाओं की पहुँच को दुर्लभ बनाने का उपभोक्ता शुल्क और सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश में कटौती के लिए निजीकरण की प्रक्रिया गरीबों को सेवाओं तक पहुंचने से रोकती है और इस प्रकार असमानता में कमी लाने के बजाए इसे बढ़ाती ही है। इस प्रकार बढ़ते खर्च, सरकारी संस्थानों में उपभोक्ता शुल्क और सरकारी क्षेत्रों की कमजोर विकास दर गरीबों को स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने से वंचित करने वाले प्रमुख कारक हैं।

सेवाओं की गुणवत्ता : 'सुपर हाई-टेक स्पेशलिटी' का हौवा

जैसा कि पहले बताया गया है चिकित्सा सुविधा का दो तरह से उपयोग होता है – एक तो व्यक्तियों के लिए सामुदायिक स्तर पर मध्यस्थता के जरिए। इन दोनों के लिए गुणवत्ता की प्रकृति और परिभाषा अलग-अलग होती है। क्लिनिकल सेवा की 'गुणवत्ता' एक जटिल धारणा होती है क्योंकि यह सिर्फ सेवा के नैदानिक और रोगानाशक क्षमताओं पर ही निर्भर नहीं करती, भले ही ये दोनों गुणवत्ता के बुनियादी तत्व हों। यह गुणवत्ता मरीजों की संतुष्टि, फिजिशियन की सामाजिक दक्षता और व्यक्तिगत प्रैक्टिशनर स्तर पर उपलब्ध जरूर समर्थन तथा अस्पतालों के टीम वर्क पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार यह रेफरल सुविधा के मुद्दों, श्रम शक्ति का सही मिश्रण और ऐसी परिस्थितियाँ बनाने से पैदा होती हैं जहां हर कोई अपने स्तर पर सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करता है।

सरकारी क्षेत्र की सेवाएं जहां रेफरल संपर्कों के प्रावधान वाले संस्थानों के जरिए संचालित होती हैं वहीं ज्यादातर निजी प्रैक्टिशनर और निजी संस्थान किसी नियमित सहयोग के बगैर अलग-अलग इकाइयों के रूप में काम करते हैं। औपचारिक संपर्कों को संचालन करने वाली प्रक्रिया काफी खर्चीली होती है और मरीजों की परेशानी बढ़ने पर आखिरी समय में अंततः सरकारी अस्पतालों का रुख करने पर उन्हें मजबूर कर देती हैं।

गुणवत्ता निर्धारण

गुणवत्ता पर बहस आमतौर पर अस्पतालों और उनके क्लिनिकल नतीजों के प्रदर्शन तक ही सीमित रहती है। गुणवत्ता का मूल्यांकन करने वाले उपलब्ध उपकरण अभी भी नतीजों के प्रदर्शन तक ही सीमित रहती हैं। गुणवत्ता का मूल्यांकन करने वाले उपलब्ध उपकरण अभी भी अपर्याप्त और अनुपयुक्त हैं। समलन, कार्यकुशलता के सूचक के रूप में बिस्तरों का टर्नओवर इस पर निर्भर करता है कि कोई मरीज कितनी जल्दी चंगा होकर अस्पताल से छुट्टी पाता है। हाई-टेक सर्जिकल मध्यस्थता के लिए चुने

गए ज्यादातर निजी अस्पतालों में बिस्तरों की सर्वोच्च टर्नओवर दर वास्तव में ज्यादा मामले और लाभ पाने के लिए दिखाई जाती है जो कि मरीजों के हित के लिए जरूरी नहीं है।

इस प्रकार निजी संस्थानों को एक और फायदा मिल जाता है – ऐसे सरकारी अस्पतालों की तुलना में एक ही तरह की शल्य क्रिया के मामले में उनकी ऑपरेशन के बाद की मृत्यु दर कम हो सकती है जिन अस्पतालों में ऑपरेशन के बाद ज्यादा सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। सरकारी अस्पतालों में शल्य क्रिया के बाद बिताए गए समय के दौरान उच्च मृत्यु दर की संभावना देखभाल की गुणवत्ता की तुलना में ज्यादा होती है। विश्व बैंक ने हालांकि निजी अस्पतालों में उच्च कार्य कुशलता स्तर को तो माना इसके लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत न कर सका।²⁵

चिकित्सा सुविधा की अन्य भूमिका में गुणात्मक निर्धारण में इसकी निरोधक भूमिका काम करती है और इसलिए ऊपर वर्णित सूची में आबादी के कवरेज का मुद्दा भी शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों, सीएचसी और पीएचसी जैसे बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं के कार्यक्रमों और संस्थानों की कार्यकुशलता की धारणा का यह आधार होता है।

इस कवरेज के महत्व को दिखाने के लिए क्षयरोग का मामला एक अच्छा उदाहरण है। जनसंख्या में जब तक एक सीमा तक संक्रमण के मामले कम नहीं होते हैं जिससे कि वह रोग आसानी से समाज में नहीं फैल सके, उस रोग की मौजूदगी के मामलों में कमी नहीं लाई जा सकती। इस तरह यदि चंद संस्थान काफी अच्छा क्लिनिकल सुविधा उपलब्ध कराते हैं तो इससे कुछ ही लोगों को फायदा मिलता है लेकिन इनका रोग की प्रवृत्तियों पर कोई असर नहीं होगा और जनसंख्या में तपेदिक की स्थिति जस की तस बनी रहेगी।

निजी अस्पताल : जनसंख्या कवरेज की परवाह नहीं करते

विशेषज्ञों के मुताबिक, रोग पहचान करने की दर कम से कम 75 प्रतिशत और इसका इलाज की दर कम से कम 85 प्रतिशत होनी चाहिए। कोई भी कार्यक्रम, चाहे वह राष्ट्रीय तपेदिक नियंत्रण के लिए संशोधित रणनीति कार्यक्रम (आरएनटीपीसी) ही क्यों न हो, इस कवरेज को हासिल करने में सक्षम नहीं होता और इसलिए कारगर नहीं कहा जा सकता।²⁶ निजी क्षेत्रों की नहीं लेते क्योंकि उनका मुख्य ध्येय लाभ कमाना होता है।

25. विश्व बैंक, 1993: वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट : इनवेस्टिंग इन हेल्थ, इनवाई, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1993

26. बनर्जी, डी. 1997 : 'सीरियस इंप्लीकेशंस ऑफ द वर्ल्ड बैंक्स रिवाइज्ड नेशनल ट्यूबरकोलोसिस कंट्रोल प्रोग्राम फार इंडिया', न्यूक्लियस फॉर हेल्थ पालिसीज' एंड प्रोग्राम, नई दिल्ली

दिल्ली सरकार (2001) के लिए जस्टिस कुरैशी द्वारा निजी अस्पतालों पर तैयार की गई एक रिपोर्ट में बताया गया है कि गरीब मरीजों को मुफ्त इलाज मुहैया कराने के लिए सरकार के साथ किए गए समझौते का वे पालन नहीं करते जिसमें कुल बिस्तरों का 25 प्रतिशत हिस्सा सबसिडी के आधार पर प्रदान किया गया है।

कारपोरेट और हाइटेक संस्थानों के लिए सबसे बड़ी समस्या अत्यधिक पड़ताल और हस्तक्षेप करना है, क्योंकि शेयर धारक यानि डॉक्टर लाभ पाने की गरज से नैतिक आधार पर इलाज करने के लिए समझौता कर लेते हैं। कुरैशी समिति ने कारपोरेट अस्पतालों को 'नोट छापने की मशीन' कहा है।²⁷ एक ऐसा क्षेत्र जो निश्चित रूप से जनसंख्या की महामारी विज्ञान संबंधी जरूरतों में कोई रुचि नहीं लेती। इस प्रकार, मरीजों को संतुष्टि और अधिकतम संभावित कवरेज प्रदान करने वाली किसी आपीस सहयोगी टीम द्वारा प्रभावशाली क्लिकल सुविधा सेवाओं की गुणवत्ता के लिए अहम है। अलग-अलग स्तरों के निजी क्षेत्र मिश्रित गुणवत्ता की बेहतरनी क्लिकल सेवाएं भले ही देते हों लेकिन रेफरल समर्थन या बड़ी संख्या में व्यापक कवरेज देने की इनकी क्षमता नहीं होती।

इसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा बाजार सजित 1,030 अरब रुपए के भारतीय चिकित्सा बाजार में हालांकि गहरी रुचि देखी गई है लेकिन भारतीय उद्योग परिसंघ (सीसीआई) 'निजी निवेश को प्रोत्साहित करने' के लिए सरकार पर भारी सबसिडी देने का दबाव डालता है और इसके तथा सरकारी निजी भागदारी के बिना प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधान प्रदान करने से इंकार करता है।²⁸

इस प्रकार, गुणवत्ता का दूसरा पक्ष मरीजों के लिए उचित कीमत तय करता है। ये कीमतें निरंतर बढ़ती गई हैं। और खासकर निजी क्षेत्र में ऐसा ही हुआ है। सभी वर्गों द्वारा भुगतान की गई औसत राशि और सरकारी एवं निजी अस्पतालों को विभिन्न एमपीपीई द्वारा दी जाने वाली खास राशि के मामले में सेक्टरों के बीच एक बड़ा अंतर न्यूनतम खर्च करने वाले समूहों को बड़े पैमाने पर सरकारी अस्पतालों से ही जुड़े रहने के लिए बाध्य करता है (तालिका 11 ए, 11बी)। सरकारी अस्पतालों में भी इसीलिए खर्च लगातार बढ़ रहे हैं गरीबों के लिए इस प्रकार प्रभावशीलता (निदान कर), निपुणता (कम खर्च में और अनुकूल प्रभावशीलता के जरिए आबादी कवरेज का उच्च स्तर)

27. कुरैशी ए.एस. 2001 : 'हाई लेवल कमेटी फॉर हास्पिटल इन दिल्ली' दिल्ली सरकार की अप्रकाशित रिपोर्ट, नई दिल्ली

28. कन्फरेंस ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज (सीआईआई) एंड बैंक किनसे एंड कंपनी, 2002 : मेडिकल केयर इन इंडिया, रिपोर्ट नई दिल्ली, पीपी 6-7

और क्षमता (मेडिकल इनपुट की तुलना में नान-मेडिकल वेलफेयर इनपुट द्वारा प्रदत्त स्वस्थ का आनुपातिक प्रभाव) के परिप्रेक्ष्य में निजी क्षेत्र का वर्चस्व दिखान का कोई साक्ष्य नहीं है क्योंकि इसके हाई-टेक सुपर स्पेशलिटी घटक कुल निजी क्षेत्र का दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं है और अपेक्षाकृत आबादी के छोटे दायरे तक ही इसकी पहुँच है। इसकी बाह्य पहुँच गरीबों को 'बाह्य रोगी की सुविधा प्रदान करने के मामले में विशेष रूप से सीमित है और सरकारी क्षेत्र के अस्पताल के विपरीत है जिस वहस से यह अपनी कल्याणकारी नीतियों में ऐसी सेवाओं को शामिल नहीं करते।

तालिका : 11 ए शहरी क्षेत्रों में अस्पताल के प्रकारों और एमपीसीई द्वारा अस्पताल में भर्ती प्रति मामले पर औसत चिकित्सकीय खर्च (रुपए में)

स्रोत : एनएसएसओ (2006) : एनएसएस 60वां दौर (जनरवरी-जून - 2004)

तालिका 11 बी : शहरी क्षेत्रों में अस्पताल के प्रकारों एमपीसीई द्वारा अस्पताल में भर्ती प्रति मामले पर औसत चिकित्सकीय खर्च (रुपये में)

सरकार की भूमिका : जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ना

ऐसा देखा गया है कि मेडिकल बाजार मुख्य रूप से एक ऐसी स्थिति में अमीरों की जरूरतों को पूरा करता है जो मौजूदा गरीबी स्तरों और उपचार तथा रोग निदान के अत्यधिक खर्च से संचालित होता है। ऐसी स्थिति में भारत सरकार से ऐसी नीतियां अपनाने की उम्मीद की जाती हैं जिनसे बुनियादी स्वास्थ्य सेवा के जरिए ज्यादा से ज्यादा लोगों को राहत दी जा सके। इसके बजाय इसका चयन 'मानव पूंजी' जुटाने के लिए किया जाता है जिसमें प्रदाताओं और स्वास्थ्य सेवाओं के उपभोक्ताओं के जरिए से व्यक्तिगत पहल को बढ़ावा दिया जाता है और प्रत्यक्ष सरकारी निवेश हटा लिया जाता है।

स्वास्थ्य पर खर्च में कमी

1980 के बाद से स्वास्थ्य क्षेत्र पर खर्च घटता गया। कैसे, इससे स्पष्ट है।

* 1998 से राज्य स्तर पर प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य पर खर्च में असरदार वृद्धि हुई है लेकिन बजट आवंटन में स्वास्थ्य क्षेत्र का हिस्सा लगातार घटता गया। इसका सीधा मतलब यही है। कि राज्यों²⁹ द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र की उपेक्षा होती रही है।

* इसी समय, स्वास्थ्य क्षेत्र के बजट में सालाना वृद्धि करके उसे जीडीपी के

29. सीता प्रभु, 2006 : भारत में स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वित्तीय प्रबन्ध : मुद्दे और प्रवृत्ति, सभी के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा : आयाम और चुनौतियां, नई दिल्ली, मानव विकास संस्थान, पृष्ठ 401-413.

3% तक लाने के अपने वादे को पूरा करने में केंद्र असफल रहा है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर सार्वजनिक खर्च 2002-03 और 2007-08 के बीच जीडीपी के 1.264 प्रतिशत से बढ़कर 1.347 प्रतिशत तक हो गया। (2002-03 और 2006-07 के बीच कुल राष्ट्रीय खर्च का प्रतिशत 1.27 से 1.38 प्रतिशत हुआ)।

* दसवीं पंचवर्षीय योजना में हालांकि केंद्रीय आवंटन में मामूली वृद्धि हुई लेकिन राज्यों के आवंटन में वास्तविक रूप से कमी हुई।³⁰

* मौजूदा वृद्धि से निकट भविष्य में 3% के सतर को हासिल नहीं किया जा सकता। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य के लिए जीडीपी का 7.5 प्रतिशत आवंटन करने को कहा है। भारत आज स्वास्थ्य पर बांग्लादेश, नेपाल और थाईलैंड से भी कम आवंटन कर रहा है। ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका जीडीपी के 3% से ऊपर पहले ही पहुंच चुके हैं। जबकि पश्चिमी देश अपने स्वास्थ्य क्षेत्र को 6% और इससे अधिक आवंटित करते हैं।

चेतावनी : स्वास्थ्य पर्यटन स्वास्थ्य क्षेत्र को बीमार बनाने में मदद दे रहा है

दसवीं पंचवर्षीय योजना³¹ और ग्याहरवीं पंचवर्षीय योजना³² के मसौदे में विदेशी मुद्रा आर्जित करने के लिए स्वास्थ्य पर्यटन को बढ़ावा देने की जरूरत पर जोर दिया गया और सार्वजनिक – निजी भागीदारी को आगे बढ़ाया गया।

इस विकृत प्राथमिकता का नेतृत्व सार्वजनिक क्षेत्र को मिलने वाले अनुदान को निजी क्षेत्र को देकर किया गया। निजी क्षेत्र को अस्पताल निर्माण के लिए भूमि अनुदान, दवाओं और उपकरणों पर आयात शुल्क में कमी, सरकार के स्वास्थ्य सूची में निजी संस्थानों को शामिल करना, गैर-क्लीनिकल में निजी ठेकेदारी की अनुमति द्वारा सार्वजनिक अस्पतालों में उन्हें जगह देने और मुनाफा कमाने का प्रस्ताव और खोज व सेवाओं की आउटसोर्सिंग जैसी सुविधाएं दी गई।

साथ में, सार्वजनिक – निजी भागीदारी को सेवाओं के साथ-साथ शोध और शिक्षा मुहैया कराने के लिए बढ़ावा दिया गया। निजी क्षेत्र को अनुदानित चिकित्सा स्नातकों को मुहैया कराने के लिए बढ़ावा दिया गया। निजी क्षेत्र को अनुदानित चिकित्सा

30. केंद्र के लिए बजट और प्रशासन, 2007 : बजट 2007-08 : सपना या निराशा? नई दिल्ली, पृष्ठ 14-16

31. भारत सरकार, 2002 : 10वीं पंचवर्षीय योजना, 2002-2007, नई दिल्ली, योजना आयोग, पृष्ठ 81-113

32. भारत सरकार, 2006 : 11वीं पंचवर्षीय योजना का मसौदा पत्र, योजना आयोग, नई दिल्ली।

स्नातकों को मुहैया कराने की जगह अब चिकित्सा शिक्षा को निजी निवेश के लिए खोल दिया गया। भारत में स्वास्थ्य सेवा पर सीआईआई की रिपोर्ट में कहा गया है कि अनुमानित सब्सिडी को विस्तार दिया जा सकता है ताकि निजी क्षेत्र के लिए विकास के प्रत्येक कदम में राज्य के निवेश की उम्मीद को आगे बढ़ाया जाए। कुरैशी कमेटी की रिपोर्ट में प्रत्यक्ष उदाहरण दिया गया है।

* 1988 में अपोलो अस्पताल को एक रुपए सालाना सांकेतिक किराए पर 15 एकड़ जमीन मुख्य जगह पर दी गई। इसके साथ शर्त यह थी कि अस्पताल में आने वाले मरीजों में से एक तिहाई को मुफ्त इलाज की सुविधा दी जाएगी।

* 1996 में जब यह अस्पताल बन कर तैयार हो गया तो उस समय उसे दिल्ली सरकार की ओर से 42 करोड़ रुपए भी दिए गए।

सेवाओं के निजीकरण से तो एक तरफ स्वास्थ्य क्षेत्र के साथ दूसरे वाणिज्य या व्यापार क्षेत्र की तरह बरताव करने की विश्व व्यापार क्षेत्र की तरह बरताव करने की विश्व व्यापार संगठन की मांग को बल दिया गया और उन्हें सामाजिक सेवा होने के कारण कोई भी विशेषाधिकार नहीं देने की मांग की गई। वहीं दूसरी तरफ सार्वजनिक क्षेत्र के अस्पतालों द्वारा भी स्वास्थ्य पर्यटन पर युक्तिसंगत जोर दिया गया। दूसरा, सार्वजनिक क्षेत्र के डॉक्टरों को निजी प्रैक्टिस करने को बढ़ावा दिया गया।

तीसरा, स्वास्थ्य क्षेत्र में कुल निवेश में गिरावट आने के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र के अंदर तृतीय सेवा संस्थानों के विस्तार को इससे बढ़ावा दिया गया।

मानों यह भी काफी नहीं था। जिला स्वास्थ्य सुधार योजना ने विश्व बैंक ने अपने अंदर ले लिया जिससे तस्वीर और विकृत हो गई। जबकि विश्व बैंक ने भारी निवेश किया और उन चयनित क्षेत्रों संसाधनों का आवंटन किया जहां व्यापार और चिकित्सा सेवा कारोबार को बढ़ावा मिल सके। इसलिए लोक निर्माण, दवाओं, परिवहन, उपकरण और शोध पर खास ध्यान दिया गया। मजदार बात यह है कि पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और पंजाब³³ जहां इन योजनाओं की की शुरुआत हुई वहां इन चीजों के साथ विदेशी मुद्रा का महत्व ऊंचा था।

मानव शक्ति की अनियमितता : आपदा का निर्धारण

व्यवस्थित स्तर सुधार की जरूरत को एक बार फिर नकार दिया गया और खर्च में

33. बारू रामा, 2001 : 'हेल्थ' सेक्टर रिफार्म एंड स्ट्रक्चलरल एडजस्टमेंट : ए स्टेट लेवेल एनालिसिस से इन पब्लिक हेल्थ एंड द पॉवटी ऑफ रिफार्मस : साऊथ एशिया प्रेडिकामेंट', नई दिल्ली, सांगे पीपी 211-234

कठौती के नाम पर कर्मचारियों की छंटनी कर दी गई जिससे सेवाएं कमजोर हो गईं। तर्क यह दिया गया कि 70-80 प्रतिशत खर्च उन लोगों के वेतन पर होता है जो काम नहीं करते हैं पूरी तरह से बकवास है। यही लोग जब निक्षी क्षेत्र में चले जाते हैं तो वहां उनका अच्छा प्रदर्शन होता है। इसलिए उनकी क्षमता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता।

असल समस्या ढांचागत, प्रबंधन और संसाधनों के स्तर पर है। अच्छी तरह से प्रशिक्षित स्थायी कर्मचारियों के बिना सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रभावी नहीं हो सकती। ये न केवल सेवा मुहैया कराते हैं बल्कि निगरानी भी करते हैं और महामारी को रोक भी सकते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए जो दूसरे संसाधन हैं (दवा, उपकरण, भवन आदि) उनके मुकाबले तो उनका वेतन सिर्फ आधार सीमा है। इन चीजों के बिना तो संसाधन न केवल क्लीनिकल देखभाल मुहैया करता है न कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा। इस बीमार मानसिकता की वजह से कई बीमारियां अब अनयंत्रित हो गई हैं और उनके लिए सेवाएं देना स्थायी उपयोगी वस्तु बन गया है। सेवा से उपयोगी वस्तु का यह बदलाव स्थायी बन गया है। इसलिए जो लोग चिकित्सा का बाजार चला रहे हैं वे इससे मुनाफा कमा सकते हैं।

इन प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के बाद, राज्य, प्रबंधक की भूमिका को स्वीकार कर चुका है, जो सैप (SAP) के ढांचे के अंदर, अच्छे प्रशासन, निजी क्षेत्र की सामाजिक जिम्मेदारी, भागीदारी और साझेदारी के नाम पर सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की कीमत पर चिकित्सा बाजार के विस्तार के अभियान के लिए आसान रास्ता तैयार करता है। इसी समय, गरीबों को निशाने पर लाकर उसे रणनीति का हिस्सा बनाया गया। राज्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद के लिए ग्राहक की तरह भी काम करता है और तीसरी दुनिया में वैश्विक स्तर पर बीमारियों से लड़ने के नाम पर उनके व्यापार मुहैया करता है। भारत ने जब से एमडीजी (MDG) को स्वीकार किया है तब से मलेरिया, टीबी और एड्स पर नियंत्रण के लिए कर्ज लेने को बाध्य हो गया है।

एमडीजी की मौजूदा योजना द्वारा उत्पन्न विकार

अकेले एड्स के लिए विश्व बैंक से 2.2 बिलियन डॉलर का पैकेज मिला और उसके साथ उसके विकास सहयोगी (आधे से ज्यादा लक्षित हस्तक्षेप के लिए) भी आए हैं। इस योजना के लिए भारत ने 1 बिलियन डॉलर की अपनी अतिरिक्त सहायता दी है जिसका श्रेय अंतरराष्ट्रीय विकास विभाग, यूनाइटेड किंगडम और बिल गेट्स और क्लिंटन फाउंडेशन³⁴ से मिलते हैं। इन सभी का निवेश सीधा योजनाओं में होता है

34. रामी छाबड़ा, 2007 : राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम : एक समीक्षा, एकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, Vol No. XLII No. 2 पृष्ठ 103-108.

न कि बुनियादी सेवाओं में जिसकी कमजोरी एड्स नियंत्रण की मूल समस्या है। खासकर आबादी के उपेक्षित तबकों में।

एमडीजी के तहत न सिर्फ मलेरिया, टीबी और एड्स जैसी बीमारियों के नियंत्रण को शामिल किया गया है बल्कि जो एनवीबीडीसी (एनवीबीडीसी) में शामिल थे उसे भी सीधे इससे जोड़ दिया गया जैसे कि फलेरिया और कालाजार।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना : प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक सेवाओं के बीच सेतु

सहायता प्राप्त सीधी योजनाओं के अलावा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना (एनएचआरएम) का लक्ष्य ग्रामीण आबादी है जिसके लिए चिकित्सा सेवा के अंगों, मुख्य स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी) और आरसीएच सेवाओं को आशा, एएनएम और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के माध्यम से मजबूती देने की मान्यता है। जो ग्रामीण इलाकों के लिए छलावा होगा। तालिका 5 और 6 में दिए गए विकृत और घातक आंकड़े यह दर्शाते हैं कि बीमारियों या उनकी घातकता पर कोई महत्वपूर्ण असर नहीं पड़ा है। प्रसव को संस्थागत बनाने का आईएमआर से कोई सीधा संबंध नहीं है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (NFHS) I और II के बीच इसमें कमी आई। संस्थागत प्रसव को जब बढ़ाव नहीं दिया गया तो कम से कम चार राज्यों में पहले और दूसरे एनएफएचएस सर्वे के बीच समान कमी देखी गई। (तालिका 12)।

तालिका 12 : एनएफएचएस III (2005-06), एनएफएचएस II (98-99), एनएचएचएस II (92-93) के मुताबिक संस्थागत प्रसव और आईएमआर पर राज्यवार तुलनात्मक सूचना

राज्यों के नाम एनएफएचएस III (2005-06) एनएफएचएस II (98-99)
एनएफएचएस I (1992-93)

	संस्थागत प्रसव दर		आईएमआर (अस्थायी)		संस्थागत प्रसव दर
	आईएमआर	आईएमआर	आईएमआर	आईएमआर	आईएमआर
उत्तर प्रदेश	22.0	73	15.2	88.7	99.9
छत्तीसगढ़	15.7	71	13.8	-	-
गुजरात	54.6	50	46.3	62.6	68.7
महाराष्ट्र	66.1	38	52.6	43.7	50.5
पंजाब	52.5	42	37.5		
उड़ीसा					
आंध्र प्रदेश					

असम
दिल्ली
राजस्थान
मेघालय
पश्चिम बंगाल
भारत

सार्वजनिक स्वास्थ्य के बुनियादी संस्थान के रूप में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की उपेक्षा और राष्ट्रीय ग्रामीण योजना को कमजोर करने के लिए एकीकृत सीधी योजना की जरूरत है। कार्यकुशल प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को सहायता देने से आशा (ASHA) ने इंकार कर दिया है जो एक छत्तरी संगठन है और जो बीमारियां इस स्तर पर रोकी जा सकती थीं वो अब मुख्य स्वास्थ्य केंद्रों की बढ़ती दूरी गरीबों को उनकी सेवाओं की पहुंच से रोकती है।

इस योजना की दूसरी समस्या यह है कि यह प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक स्तर के सार्वजनिक संस्थानों के बीच प्रभावी सेतु नहीं बनाता है। इससे अनिवार्य रूप से द्वितीयक और तृतीयक सेवा गरीबों की पहुँच में कम होती है।

इसलिए ज्यादातर लोग जब गरीबों की रक्षा और उनकी सामाजिक सुरक्षा के बारे में बात करते हैं तो राज्यों का ध्यान मुख्य रूप से जनसंख्या नियंत्रण के लिए आरसीएच रणनीति पर ज्यादा होती है और सहायता और आसान कर्जों के माध्यम से वे विदेशी मुद्रा बनाते हैं। वैश्विक दानदाताओं और उनके बहुराष्ट्रीय सहयोगियों³⁵ द्वारा तीन बीमारियों की पहचान की गई है जिन पर नियंत्रण के लिए सीधी रणनीति के तकनीकी हस्तक्षेप को स्वीकार किया गया है। ये हैं मलेरिया, टीबी और एड्स।

राज्यों की उपलब्धि : विभिन्न प्रयासों से

केंद्रीय योजनाओं के माध्यम से संसाधनों पर केंद्र का नियंत्रण रहता है जिससे राज्य स्तरीय योजनाओं को प्रभावित करने की उनके पास शक्ति होती है जबकि ज्यादातर राज्य वित्तीय संकट में हैं। स्वास्थ्य और कल्याण क्षेत्र में निवेश पर राज्य के आवंटन में भी भिन्नता होती है जो स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए गंभीर है। परिणामस्वरूप राज्यों की कुल उपलब्धि में मामूली अंतर है।

35. केंट बुश और वाल्ट गिल, 2002 : वैश्वीकरण और बुपक्षीय सार्वजनिक निजी स्वास्थ्य नीति के मुद्दे, साझेदारी : वैश्वीकृत दुनिया में स्वास्थ्य नीति पर स्वास्थ्य नीति के मुद्दे, संपादक - केली ली, केंट बुश और सुजेन फस्टुकियान, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस, पृष्ठ, 41-62, कैम्ब्रिज।

के. सीता प्रभु ने गरीबी सूचकांक के परिष्कृत रूप का इस्तेमाल मिलया है जिसमें मृत्यु की संभावना, साक्षरता दर, जिन बच्चों में प्रतिरक्षण क्षमता नहीं है, गैर-संस्थागत प्रसव, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच नहीं, चार साल से कम उम्र के कुपोषित बच्चे, को उपलब्धि सूचकांक के रूप में शामिल किया गया है और स्कोरिंग का नया तरीका विकसित किया जिसमें सबसे कम नंबर पाने वाले को सबसे ऊपर रखा गया।

उनके मुताबिक सबसे अच्छा प्रदर्शन करने वाले राज्य को सबसे कम नंबर मिला। यह हैं कर्नाटक, हरियाणा, तमिलनाडु, पंजाब और गुजरात। दूसरी सूची में महाराष्ट्र, असम, केरल, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश को शामिल किया गया और सबसे कम उपलब्धि पाने वालों में राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार हैं यहां केरल की स्थिति उम्मीद के विपरीत है जहां गरीबी के बावजूद नतीजे अच्छे हैं और पीने के पानी की आपूर्ति में उपलब्धि खराब है। निश्चित आंकड़ों की जरूरत है। हालांकि प्रभु ने जिन आंकड़ों का इस्तेमाल किया है वह 1990³⁶ के दशक के शुरूआत के हैं। स्वास्थ्य पर किसी भी योजना के पुनर्विचार से पहले विभिन्न राज्यों की अलग-अलग जरूरतों पर ध्यान देना होगा। जैसे कि उत्तर-पूर्वी पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है जिसे ज्यादातर विश्लेषण में छोड़ दिया गया है। ये राज्य छोटे हो सकते हैं लेकिन यहां समस्याएं विकराल हैं।

लैंगिक न्याय

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की स्थिति में महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति और स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुंच पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पितृसत्तात्मक समाज और शिक्षा, काम के मौके, मजदूरी के विभाजन और फैसलो लेने की शक्ति में लैंगिक विभाजन होने के कारण अनिवार्य रूप से अब अपर्याप्त पारिवारिक संसाधनों की हिस्सेदारी मिलने की बारी आती है तो हमेशा ही गंभीर संकट के समय महिलाओं को पीछे छोड़ दिया जाता है।

लड़कियों का कम लिंगानुपात, प्रसव के दौरान महिलाओं की उच्च मृत्यु दर (प्रति एक हजार में चार-पांच) और परिवार में स्वास्थ्य खर्च में महिलाओं की कम हिस्सेदारी, वे ज्यादातर पारम्परिक उपचार या झोला छाप हकीमों का सहारा लेती हैं और अच्छे

36. के. सीता प्रभु और संगीता कामदार, 2002 : भारत के सामाजिक क्षेत्र में सुधार “मानव निर्धनता और आम निर्धनता : संबंध और आशय”, संपादक - के.सीता प्रभु और आर सुदर्शन, सोशल साइंस प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 102-128

डॉक्टरों³⁷ के पास कम ही जाती हैं; से यह स्पष्ट हो जाता है उनके लिए स्वास्थ्य सेवाएं सुनिश्चित करने पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

स्वास्थ्य सेवाओं का स्थायी पक्षपात

स्वास्थ्य सेवाएं, जिनका प्राथमिक केंद्र मातृत्व सेवा है, का ध्यान जनसंख्या नियंत्रण पर है। आंकड़े मौत के कारणों को दर्शाते हैं। पंजीकरण योजना का नमूना यह दिखाता है कि इस पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है। आंकड़ा यह दर्शाता है :

* महिलाओं की कुल मृत्यु दर (15-45 साल की) में मातृत्व मृत्यु दर केवल 2 प्रतिशत है। जबकि 15 साल से कम उम्र की 30 प्रतिशत लड़कियों की मौत³⁸ होती है।

स्वास्थ्य रणनीति पर मध्यम वर्ग का एजेंडा हावी

महिलाओं और बच्चों के खराब स्वास्थ्य के मुद्दे पर बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं की गैर-मौजूदगी और गर्भावस्था के दौरान देखभाल, नई प्रजनन तकनीक (NRI) के आने से एक बार फिर उदाहरण बन गया है कि मध्यम वर्ग की जरूरतें बहुसंख्यक वर्ग की जरूरतों पर हावी हैं। गरीबों में बाइपन अक्सर द्वितीयक होती है और वे बेहतर प्रसव सेवा, प्रसूति की जटिलता और जनन भागों में होने वाले संक्रमण का इलाज की मांग करते हैं न कि खर्चीले नई प्रजनन तकनीक।

प्रसव के स्थान (तालिका 9) के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि हालांकि अस्पताल में प्रसव कराने के मामलों में सभी राज्यों में वृद्धि हुई है लेकिन ग्रामीण इलाकों में घरों में प्रसव कराने की संख्या अभी भी तीन गुणा ज्यादा है। यह प्रसव कराने वाले के महत्व को स्वीकार करने और उन्हें स्वास्थ्य सेवा प्रसव व्यवस्था में शामिल करने की मांग है।

लिंग आधारित बजट : महज शाब्दिक सेवा

महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को मजबूती देने के इरादे से उनकी सहायता में महिला केंद्रित योजना (सातवीं योजना) और लिंग आधारित बजट (नौवीं) को लागू किया गया। यह प्रयास महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों में निवेश के जैसा दिखा। 2007-08 में इसे कुल हिस्सों में जीडीपी का 4.8% मिला जो पिछले साल के 3.8% से ज्यादा है।

37. गोपाल मीणा, 1997 : 'मजदूरी प्रक्रिया और इसका महिला मजदूरों पर प्रभाव : तिरुनेलवेली जिले की बीड़ी उद्योग पर एक अध्ययन, सामाजिक औषधी और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली को शोध पत्र सौंप दिया गया।

दुर्भाग्यवश, कार्यक्रमों के स्वरूप और उनकी महिलाओं के लिए महत्व रखे बिना कार्यक्रम के दृष्टिकोण को सीमित कर दिया गया है। काम, मजदूरी, कल्याण के महत्व को अस्वीकार कर दिया गया और लिंगा आधारित बजट को वृद्धि आधारित अर्थव्यवस्था के कुल परिप्रेक्ष्य के ऊपर आधारित अर्थव्यवस्था के कुल परिप्रेक्ष्य के ऊपर आश्रित कर दिया गया है जहां महिलाएं असंगठित क्षेत्र में जाने को मजबूर हैं या परिवार रखवाली या जनसंख्या नियंत्रण का साधन है।

यहां तक कि इसके तहत महिलाओं से संबंध नहीं रखने वाले कार्यक्रमों के लिए भी आवंटन किया गया जैसे कि एम्स (AIMS) और सफदरजंग अस्पताल⁴¹। उस पैतृक संदर्भ में इसका नुकसान भी होता है। ऐसे में गर्भ निरोध, जनसंख्या नियंत्रण और बच्चों की देखभाल को महिलाओं से बाहर के कार्यक्रम के रूप में देखा जाता है जिसे ठीक करने का प्रयास।

इस रणनीति के खराब प्रभाव से लिंग आधारित मानव विकास सूचकांक में भारत की स्थिति लगातार नीचे बनी हुई दिखती है।

* 140 देशों में भारत का स्थान 98वां है।

* मानव विकास रिपोर्ट 2005 के मुताबिक महिलाओं की आर्थिक गतिविधि पुरुषों की गतिविधि के 50 प्रतिशत हैं। जबकि महिलाएं दिन भर में पुरुषों के 391 मिनट काम करने की जगह 457 मिनट काम करती हैं। महिलाओं की अर्जित आय पुरुषों की आधे से भी कम होती है। उनकी साक्षरता दर अभी भी 47.8 प्रतिशत है जो काफी कम है।

लिंग आधारित न्याय तो यही है कि महिलाओं को राष्ट्रीय योजनाओं सहित सभी सेवाओं में न सिर्फ बराबर की हिस्सेदारी मिलनी चाहिए बल्कि समानता, न्याय और निष्पक्ष वितरण के संदर्भ में इसे अपनाना जरूरी है। खास कर महिलाओं के स्वास्थ्य के मामले में आरसीएच (RCH) सेवाओं को व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था में एकीकृत करने की जरूरत है जैसा कि अल्मा अटा घोषणा पत्र में विचार किया गया था।

चुनौतियों से निपटने की रणनीति : आगे का रास्ता

लोकतंत्र को मजबूत बनाने की दिशा में बढ़ना अगर भारत का मकसद है और स्वास्थ्य क्षेत्र में समानता और न्याय में वृद्धि करना है तो सार्वजनिक क्षेत्र को अपने अधिकारों का सेवाओं को स्वरूप देने में अवश्य इस्तेमाल करना होगा न कि निजी क्षेत्र के लिए प्रबन्धक बनकर। इसका मतलब है –

* सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए आधारभूत-संरचना का सुव्यवस्थित निर्माण ताकि

व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा हकीकत में बदल सके। इसका मतलब यह होगा कि एकीकृत स्वास्थ्य सेवा को विकसित करना जो प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक स्तर पर सेवा को मजबूती देगा। अन्तर क्षेत्रीय बंधन जैसे अनाज की उपलब्धता (सार्वजनिक वितरण प्रणाली, पीनी का पानी की आपूर्ति, सफाई का प्रबंध, सार्वजनिक परिवहन, घर आदि पर जोर देना। तृतीयक स्तर की सार्वजनिक सेवाएं गंभीर संकट में हैं। न केवल उन्हें कहीं और भेजने की सुविधा मुहैया कराने में जिन्हें इसकी जरूरत है बल्कि तृतीयक स्तर की सेवा के बुनियादी न्यूनतम मानक को स्थापित करने की भी जरूरत है जो देश की रोग विज्ञान की आवश्यकताओं के लिए प्रभाव और सफल है। इसके बिना निजी क्षेत्र पर नियंत्रण या नियामक राज्य द्वारा संभव नहीं है।

* यूजर चार्ज के अनुभव से यह स्पष्ट है कि वह हाशिए के तबकों के लिए नुकसानदेह है और कुल संसाधनों आवश्यकताओं में अपनी थोड़ी ही भागीदारी निभाता है। यह राज्यों के संस्थानों की कुल क्षमता सुधार नहीं करता है। इसलिए यूजर चार्ज को हटाने की आवश्यकता है।

* केवल एक ही रास्ता है वह यह कि कुल निवेश सतर को बढ़ाया जाए और पहले से एकीकृत इस सिद्धान्त में देरी न हो। सब्सिडी को निजी क्षेत्र की ओर स्थानान्तरित करने की जगह इसका इस्तेमाल सार्वजनिक क्षेत्र को मजबूत बनाने में किया जा सकता है। अतिरिक्त संसाधनों के लिए स्वास्थ्य अधिभार की संभावना या राष्ट्रीय बीमा व्यवस्था जरूरी बनाने पर बहस हो सकती है।

* एकीकरण का वादा जरूर पूरा किया जाए। खासकर रोग वाहक बीमारी नियंत्रण कार्य कार्यक्रम के मामले में। संगठन और प्रबंधन को रोग विज्ञान की जरूरतों के मुताबिक निर्देशित सिद्धान्त बनाना चाहिए।

* सेवाओं के विभिन्न स्तरों के बीच एक जगह से दूसरी जगह भेजने की सेवा को मजबूत बनाने की जरूरत है। इसके लिए बेहतर सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था जरूरी है ताकि मरीजों को आने-जाने में सहायता मिले। इसमें नई योजनाओं को परखा जा सकता है।

* आवश्यक दवाओं की उपलब्धता को पर्याप्त मात्रा में बनाए रखना दूसरी प्रमुखता होनी चाहिए।

* निजी क्षेत्र को भारी बनाया जाए, इसका नियमन और नियंत्रण गंभीर है। मानकीकृत उपचार, इसकी कीमत और राष्ट्रीय नियंत्रण वस्था के लिए आंकड़ों को अनिवार्य रूप से इकट्ठा करना न्यूनतम आवश्यकता जरूरी हो।

* सार्वजनिक – निजी भागीदारी में इलाकों और वहां के लोगों की प्राथमिकता

की जिम्मेदारी होनी चाहिए। द्वितीयक और तृतीयक स्तर के सार्वजनिक संस्थानों पर से प्राथमिक सेवा के बोझ में कमी की जाए। कॉरपोरेट अस्पतालों के साथ साझेदारी में यह ध्यान रखा जाए कि उनका मकसद सिर्फ मुनाफा कमाना तो नहीं है।

* पारम्परिक दाइयों, पंजीकृत चिकित्सकों और अप्रशिक्षित प्रैक्टिसनरों को प्रशिक्षण और रेफरल सहायता देना जिसका मतलब गरीबों के लिए प्राथमिक सेवा में विस्तार से हैं।

* राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना को एकीकृत सेवा के निर्माण की दिशा में जरूर काम चाहिए जैसा कि अलमा अटा घोषणा पत्र में स्वीकार किया गया था। यह तभी संभव है जब प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को मजबूती प्रदान की जाए, रेफरल व्यवस्था और द्वितीयक अस्पताल का तृतीयक संस्था से संबंध बेहतर हो तृतीयक क्षेत्र में उन्नत सेवा पर ज्यादा जोर देने पर व्यवस्था अपहरण होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

* लिंग आधारित संवेदनशील नीति जरूरी और लिंग आधारित बजट परिप्रेक्ष्य के साथ जरूरी। जहां पितृसत्तात्मक मूल्यों और कार्यक्रम रणनीति में उनका प्रवेश हो उसे चेतना से निकालना।

* ऊपर के तरीकां पर अमल के लिए यह महत्वपूर्ण है कि स्वास्थ्य सुधार सूचकांक, सामाजिक क्षेत्र का विकास और मानव निर्धनता सूचकांक मानदंड में उनकी उपलब्धि के मुताबिक राज्यों का समूह हो। इससे इन राज्यों की विभिन्न जरूरतों के निर्धारण का अच्छा औजार बनेगा।

केंद्रीय बजट में शिक्षा

केंद्र के लिए बजट और प्रशासनिक जिम्मेदारी (सीबीजीए)¹

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी समाज के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और सरकार शिक्षा मुहैया कराने में एक हथियार की तरह काम करती है, एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी का निर्वहन करती है। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति और बाद में कुछ कदम सरकार द्वारा उठाए गए खासकर संविधान में 83वां और 86वां संशोधन कर। अब शिक्षा मौलिक अधिकार घोषित हो चुकी है। राष्ट्रीय नीति की पहली प्राथमिकता प्राथमिक शिक्षा को व्यापकता प्रदान करना है। इसके लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी)² 1997 में, सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) 2001 में और दूसरे कार्यक्रम लागू किए गए जिनकी चर्चा हम यहां करेंगे।

शिक्षा में अनंत लक्ष्य

1968 की शिक्षा नीति में यह विचार किया गया कि शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च जीडीपी के अनुपात में आने वालों सालों में बढ़ाकर 6% कर दिया जाएगा। हालांकि 1990-91 के 5% से ज्यादा की तुलना में शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च 2005-06 में घट कर करीब 3.66% रह गया। चालीस साल बाद भी शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च 2005-06 में घट कर करीब 3.66% रह गया। चालीस साल बाद भी शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च को बढ़ा कर जीडीपी के 6% तक करने का विचार राष्ट्रीय वादा ही रह गया। शिक्षा पर बनी बड़ी नीतियों और कार्यक्रमों में पर संक्षिप्त नजर डालते हैं। साथ ही पिछले कुछ सालों में इस क्षेत्र के निर्णायक मुद्दों और महत्व की मुख्य बातों पर गौर करेंगे।

भारत में शिक्षा पर बड़ी नीतियों की घोषणा

देश में शिक्षा के क्षेत्र में उठाए गए कदमों और निर्णायक नीतियों का क्रमानुसार विवरण निम्नलिखित हैं :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) 1986 को 1992 में संशोधित किया गया जिसमें प्राथमिक शिक्षा के तीन क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया।

i सर्वव्यापी नामांकन

ii 14 साल तक के बच्चों की सर्वव्यापी अवधारणा

1. 'केंद्रीय बजट' 2008-09 पर राष्ट्रीय सम्मेलन' पर पृष्ठभूमि टिप्पणी के लिए पूजा पार्वती द्वारा लिखित।

iii शिक्षा की गुणवत्ता में वास्तविक सुधार ताकि सभी बच्चे सीखने के जरूरी स्तर को हासिल करें।

1987 में शुरू किए गए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड का मकसद भी यही था कि सभी प्राथमिक स्कूलों के माहौल में सुधार हो और न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं द्वारा बच्चों के सीखने की क्षमता बढ़े। इस अभियान में सभी 5 लाख 23 हजार प्राथमिक स्कूलों को शामिल किया गया।

10वीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में यह देखा गया कि सर्व शिक्षा अभियान द्वारा प्राथमिक शिक्षा उपयुक्त बनी। साथ ही यह स्वीकार किया गया कि व्यावसायिक शिक्षा और क्षमता विकास शिक्षा का एक निर्णायक क्षेत्र है और इसे हर स्तर पर महत्व देने का फैसला किया गया। 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 5 से 14 साल तक के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया और यह सुविधा मुहैया कराई गई कि 'सभी राज्य छह से चौदह साल तक के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा मुहैया कराएंगे और वे इसके लिए कानून बना सकते हैं।' यद्यपि कुछ राज्यों ने मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा (तालिका 1) सुनिश्चित करने के लिए कानूनी प्रावधान की आवश्यकता को माना भी। यह अभी भी कानूनी बनाम वास्तविक अमल का मसला है और दी जा रही सुविधाओं पर निगरानी रखने का।

शिक्षा और राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम

मई 2004 में घोषित यूपीए सरकार के राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम में भी इस पर प्रतिबद्धता जताई गई है। इस वायदे को पूरा करने के लिए सरकार ने शिक्षा के बजट में वृद्धि की और वित्त अधिनियम 2004-05 (नवम्बर 2) में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों पर 2% अधिभार (CESS) लगाया। 2006-07 केन्द्रीय बजट में भी शिक्षा के लिए योगदान में वृद्धि के लिए अधिभार में 1% वृद्धि की गई।

तालिका 1 : भारत में शिक्षा पर राज्य स्तरीय कानून

राज्य अधिनियम और वर्ष

अंडमान और निकोबार

2. डीपीईपीडी की नवम्बर 1994 में 7 राज्यों (42 जिलों) शुरुआत हुई, मई 1996 में दूसरा चरण आया (डीपीईपी II) छह अतिरिक्त राज्यों के साथ कुल 80 जिलों को शामिल किया गया। अभी यह सिर्फ दो राज्यों में चल रहा है।

आंध्र प्रदेश आंध्र प्रदेश अधिनियम, 1982
 असम असम प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1974
 चंडीगढ़
 दिल्ली दिल्ली प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1960
 हिमालच प्रदेश हिमाचल प्रदेश आवश्यक प्राथमिक शिक्षा एक्ट, 1997
 जम्मू-कश्मीर जम्मू और कश्मीर स्कूल शिक्षा अधिनियम, 2002
 कर्नाटक कर्नाटक शिक्षा अधिनियम, 1983
 केरल केरल शिक्षा अधिनियम, 1958
 मध्य प्रदेश मध्य प्रदेश जन शिक्षा अधिनियम, 2002
 महाराष्ट्र बांबे प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1947
 मेघालय मेघालय स्कूल शिक्षा अधिनियम, 1987
 पांडिचेरी पांडिचेरी स्कूल शिक्षा अधिनियम, 1987
 पंजाब पंजाब प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1960
 राजस्थान राजस्थान प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1964
 सिक्किम सिक्किम प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 2000
 तमिलनाडु तमिलनाडु आवश्यक प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1994
 पश्चिम बंगाल पश्चिम बंगाल प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1973

नोट: बॉक्स में दिए गए राज्यों के शिक्षा अधिनियम उन राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो बच्चों की अनिवार्य शिक्षा की गारंटी नहीं देते हैं लेकिन राज्यों को अनिवार्य शिक्षा अधिकार को लागू करने के लिए विकसित करने की इजाजत देते हैं। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ तालमेल बिठाने के लिए इनमें तुरंत संशोधन की जरूरत है।

उल्लेखित नामों के अलावा अन्य राज्यों ने कानूनी प्रावधानों के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया हुआ है।

स्रोत : 1. निरंजनाराध्य और अरुणा कश्यप¹ फंडामेंटल्स ऑफ द फंडामेंटल राइट टू एजुकेशन इन इंडिया। सेंटर फॉर चाइल्ड एंड द लॉ, नेशनल लॉ स्कूल, ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी, एक्शन एंड इंडिया, 2006, पृष्ठ 17-18

2. <http://education.nic.in/cd50yeas/x/TC/HA/7CHA0601.htm>

3. <http://megassebly.gov.in/business/1991/01-04-1991.htm>

4. cag.nic.in/cag_reports/pondicherry/rep_2003/OVERVIEW.pdf.

सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए)

छह से चौदह साल तक के 19 करोड़ 50 लाख बच्चों की जरूरतों के लिए सर्व शिक्षा अभियान मौजूदा यूपीए सरकार का महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा। सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम में बच्चों की शुरूआती शिक्षा को जोड़ने का प्रस्ताव दूसरा हालिया विकास है। (द इकोनॉमिक टाइम्स, 3 दिसम्बर, 2007)। इसमें कहा गया है कि सर्व शिक्षा अभियान का केंद्र संख्या की जगह गुणवत्ता पर हो। योजना आयोग का प्रस्ताव है कि कम से कम एक साल तक बच्चों की शुरूआती देखभाल और शिक्षा दी जाए। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि सर्व शिक्षा अभियान का केंद्र संख्या की जगह गुणवत्ता पर हो। योजना आयोग का प्रस्ताव है कि कम से कम एक साल तक बच्चों की शुरूआती देखभाल और शिक्षा दी जाए। इसका मतलब यह हो सकता है कि सर्व शिक्षा अभियान का लक्ष्य भटक जाए। एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) के सिद्धान्त पर योजना आयोग ने इस प्रस्ताव का सुझाव दिया। यह कार्यक्रम महिला और बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित होता रहा है जिसे विभाजित बच्चों की शुरूआती शिक्षा को सर्व शिक्षा अभियान साथ जोड़ दिया गया। इस कदम से एकीकृत बाल विकास योजना का खात्मा हो जाएगा जबकि सर्व शिक्षा अभियान पर प्रभाव पड़ेगा जिससे इसमें संख्या पर ध्यान केंद्रित करने की जगह गुणवत्ता पर ध्यान होगा। प्राथमिक पूर्व शिक्षा और देखभाल तीन से छह साल के बच्चों के लिए है जिसे एकीकृत बाल विकास योजना के आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं द्वारा मुहैया कराया जाता है।

एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस)

एकीकृत बाल विकास योजना जिसमें पारम्परिक तौर पर स्कूल से पहले (प्री-स्कूल) के भाग को शामिल किया गया है को व्यापक और विस्तृत बनाया जा रहा है। इस प्रक्रिया के तहत आंगनबाड़ी को स्कूलों के साथ जोड़ा गया है। इसके अलावा दोनों मंत्रालयों ने एक खास रणनीति बनाई है जिसके तहत आंगनबाड़ी केंद्र या तो स्कूल परिसर में स्थित हैं या स्कूल के पास। इससे उम्र के हिसाब में से बच्चों को सही संस्था में भेजने और बदलने में मदद मिली है। इस कदम पर मौजूदा समय में यह तर्क दिया जा सकता है कि प्राथमिक पूर्व स्कूल औपचारिक स्कूल का हिस्सा नहीं है। एक साथ दो कार्यक्रम का असर दोनों का अंत हो सकता है।

यह सच्चाई आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं और प्राथमिक शिक्षकों के संयुक्त प्रशिक्षण

से सामने आई। दोनों की अलग-अलग जरूरतें हैं और उन्हें जोड़ने से गंभीर प्रभाव पड़ेगा।

शिक्षकों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद (NCTE) की स्थापना अगस्त 1995 में संसद द्वारा कानून बना की गई थी। 2007-08 में संसद द्वारा कानून बनाकर की गई थी। 2007-08 से इस योजना को सर्व शिक्षा अभियान के साथ शामिल कर दिया गया।

केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संसाधनों की भागीदारी

सर्व शिक्षा अभियान के लिए संसाधनों की भागीदारी पर विवाद उठने के बाद केंद्र सरकार ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में के लिए आधा हिस्सा देने का राज्य सरकारों ने कड़ा विरोध किया। ऐसे में प्राथमिक शिक्षा को व्यापक बनाने का विधेयक केंद्रीय कैबिनेट के विचाराधीन है। नए फार्मूले के तहत 11वीं पंचवर्षीय योजना के पहले दो सालों में सर्व शिक्षा अभियान के लिए केंद्र की हिस्सेदारी 65% और राज्य की 60% और राज्यों की हिस्सेदारी बढ़कर 40% हो जाएगी।

इसी तरह योजना के चौथे साल में केंद्र की हिस्सेदारी घट कर 55% रह जाएगी। बाकी हिस्सा राज्यों को वहन करना होगा। योजना के पांचवें और अंतिम साल में दोनों की हिस्सेदारी 50-50% हो जाएगी जैसा कि सर्व शिक्षा अभियान को 2001 में लागू करते समय प्रावधान किया गया था। योजना के शुरू में ही कोष आवंटन के इस तरीके का राज्य सरकारों ने विरोध किया था। राज्यों के पास पर्याप्त कोष हैं और उन्हें अतिरिक्त सहायता की जरूरत नहीं है। (हिंदू, 8 अगस्त 2007)।

मिड-डे मील योजना

प्राथमिक स्तर के साढ़े नौ लाख सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों जिनमें ईजीएस और एआईई केंद्रों में करीब 12 करोड़ बच्चे पढ़ते हैं। इन सभी को मिड-डे मील योजना³ में शामिल किया गया है। इस योजना के तहत मानक को सितम्बर 2006 में संशोधित किया गया और पोषण मानक को बढ़ा दिया गया। 2007-08 के केंद्रीय बजट में यह प्रावधान किया गया कि शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉकों के उच्च प्राथमिक स्कूलों में भी इसे लागू किया जाए।

तालिका 2 मिड-डे मील योजना को प्रदर्शित करता है।

तालिका 2 : मिड-डे मील योजना : एक नजर

शामिल स्कूल	9.53 लाख प्राथमिक स्कूल और ईजीएस/एआईई केन्द्र
शामिल बच्चे	11.94 करोड़

आवंटित अनाज और उठाया गया प्रतिशत 3.3.2006 तक 22050 लाख मीट्रिक टन (64%)

इसके लिए मुहैया केंद्रीय सहायता

(i) खाना पकाने का खर्च 1781 करोड़ रुपए

(ii) प्रबंधन, निगरानी और मूल्यांकन 21.30 करोड़ रुपए

बजट अनुमान 3010.76 करोड़ रुपए की तुलना में कुल खर्च 3077.59 करोड़ रुपए (3.3.2006 तक)

स्रोत : प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता विभाग, वार्षिक रिपोर्ट 2005-06

मिड-डे मील योजना को अंतिम बार जून 2006 में संशोधित किया गया। इस योजना के संचालन मानक में बदलाव किया गया। हालांकि मूल्यांकन अध्ययन में प्रबंधन, प्रशासनिक और समस्याग्रस्त क्षेत्रों में कोष का उपयोग के मुद्दे को उठाया गया।

सभी राज्य और केंद्र शासित प्रदेश इस योजना पर अमल कर रहे हैं। साथ ही अपने संसाधनों का योगदान भी दे रहे हैं। इसके अलावा 2006-07 में 94,500 रोसाई घर के निर्माण और 2.60 लाख स्कूलों के लिए रसोई के सामनों के लिए कोष को मंजूर किया गया। 2007-08 से शैक्षिक रूप से पिछड़े 32.47 ब्लॉकों के उच्च प्राथमिक स्कूलों को इस योजना में शामिल करने का इसमें प्रस्ताव रखा गया।

प्रारम्भिक शिक्षा कोष

वित्त अधिनियम, 2000 द्वारा सभी बड़े केंद्रीय करों पर शिक्षा के लिए 2% अधिभार लगा कर प्रारम्भिक शिक्षा कोष की स्थापना की गई जो 14.11.2005 से अस्तित्व में आया। 2007-08 के दौरान इस कोष में 10,393 करोड़ रुपए का हस्तांतरण हुआ। इस राशि का इस्तेमाल मुख्य रूप से सर्व शिक्षा अभियान/मिड-डे मील के लिए किया जाएगा।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी)

निम्नलिखित तालिका मार्च 2007 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की स्थिति के मुख्य बिंदुओं को दर्शाती है।

तालिका 3 : डीपीईपी की स्थिति-मार्च 2007

राज्य केंद्र शासित प्रदेश केंद्र द्वारा जारी राज्यों द्वारा जारी कुल उपलब्ध कोष 31 मार्च 2007 तक खर्च बची राशि

उड़ीसा

राजस्थान

कुल

स्रोत : <http://ssa.nic.in/finmangement/13jrm/annex%20J-DPEP.pdf>

स्कूलों में सूचना और संचार तकनीक और अपंग बच्चों के एकीकृत शिक्षा (IEDC) योजना अभी संशोधन के तहत है। 1993-94 में पहुंच और औचित्य (Access and Equity) योजना शुरू की गई। इसके तहत संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों को ग्रामीण, दूर-दराज और पहाड़ी इलाकों की उन लड़कियों के हॉस्टल और रहने की सुविधा मुहैया कराने के लिए आर्थिक सहायता दी गई जो लड़कियां माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर की पढ़ाई कर रही हैं। खास कर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए। इस योजना को माध्यमिक स्तर पर व्यापक पहुंच और गुणवत्ता योजना (Success) के साथ मिलाने का प्रस्ताव है जो अभी तैयार हो रही है।

माध्यमिक स्तर पर व्यापक पहुंच और गुणवत्ता योजना (Success)

सर्व शिक्षा अभियान पर अमल के बाद 11वीं पंचवर्षीय योजना में एक नया कार्यक्रम लाने का प्रस्ताव है जिससे उच्च प्राथमिक स्तर की पढ़ाई पूरी करने वाले छात्रों में अमृतपूर्व वृद्धि होगी। माध्यमिक शिक्षा की पहुंच के लिए मांग में वृद्धि की आवश्यकता महसूस की गई। 2007-08 के लिए इसके तहत 1305 करोड़ रुपए का प्रावधान (उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिए आवंटन सहित) हैं।

माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन देने की राष्ट्रीय योजना (Success)

2006-07 का बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री ने माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन देने की योजना की घोषणा की थी जिसे अभी तैयार किया जा रहा है। इसके मुताबिक 2007-08 के लिए अभी उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिए आवंटन सहित सांकेतिक रूप से एक करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है।

वयस्क शिक्षा और क्षमता विकास योजना

साक्षरता अभियान और संचालन पुनःस्थापना की मौजूदा योजना और नए साक्षरों के लिए जारी शिक्षा योजना को मिलाकर एक योजना वयस्क शिक्षा और क्षमता विकास कर दिया गया जो दोनों योजनाओं को समाहित करेगा। उत्तर-पूर्वी राज्यों सहित इसके लिए 322 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है।

शैक्षणिक सुधार पर राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सलाह पर मान संसाधन

विकास मंत्रालय उत्साहित

विश्वविद्यालय व्यवस्था में भारी विस्तार करने की सरकार की योजना को देखते हुए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय ज्ञान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा व्यवस्था में योजनाबद्ध सुधार करने के सुझाव पर व्यापक परामर्श लेने का फैसला किया है ताकि इसे लागू करने के औचित्य का पता लगाया जा सके।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के नेतृत्व में लिए जाने वाले परामर्श के दौरान क्षेत्रीय सम्मेलनों की शृंखला आयोजित की जाएगी। इसके तहत सभी विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की बैठक बुलाई जाएगी जो संभवतः अक्टूबर में होगी। विश्वविद्यालय सुधार का मुद्दा राष्ट्रीय सलाहकार शिक्षा समिति (सीएबीई) के सामने भी रखा जाएगा।

प्रधानमंत्री के दिशा-निर्देश पर इन परामर्शों में ध्यान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने जो सुझाव दिया है उसे अपनाने से पहले देश भर में बहस के जरिए लोगों के नजरिए का पता लगाया जाए।

मजिदर तथ्य यह है कि राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने जो सुझाव दिए हैं उसमें से योजनाबद्ध सुधार को योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान आयोग की बैठक की कार्यसूची नोट में आयोग ने सुझाव दिया कि 16 नए केंद्रीय विश्वविद्यालयों को जब सेमेस्टर सिस्टम का स्थापित अधिभार होगा तो इसे अन्ततः सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में बढ़ाया जा सकेगा।

दूसरे योजनाबद्ध सुधारों में योजना आयोग ने सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में सामूहिक दाखिला प्रक्रिया को अपनाने, लगातार आंतरिक मूल्यांकन और वार्षिक परीक्षा के बदले मूल्यांकन करने का सुझाव दिया। एक क्रेडिट व्यवस्था अपनाने जिससे छात्रों को एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय जाने में पढ़ाई की क्षति हुए बिना मौका मिलेगा।

स्रोत : दि इकोनॉमिक टाइम्स, 3 सितंबर 2007

हालांकि इससे भी ज्यादा करने की जरूरत है। शिक्षा के अधिकार को अभी भी न्यायोचित बनाना है। शिक्षा के सभी स्तरों पर वित्तीय आबंटन जरूरत के मुताबिक नहीं होना लगातार जारी है। 1968 में जिस लक्ष्य को हासिल करने का विचार बना था वही 2007 में भी है। इस परिस्थिति में यह समझना आसान है कि देश में शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च की प्रवृत्ति क्या है?

भारत में शिक्षा क्षेत्र पर खर्च करने की प्रवृत्ति

1951-52 में जब आर्थिक योजना की शुरुआत हुई तो केंद्र की तरह राज्य

सरकारों की प्राथमिकता में भी शिक्षा क्षेत्र पीछे था। पिछले 50 सालों में खर्च करने के तरीके और प्राथमिकता में बदलाव हुआ है। निम्नलिखित तालिका (तालिका 4) से पंचवर्षीय योजना के दौरान शिक्षा की मुख्य बातों का पता चलता है।

तालिका - 4 शिक्षा क्षेत्र में योजना के मुताबिक प्राथमिकता

योजना अवधि	शिक्षा क्षेत्र की प्राथमिकता
पहली योजना (1951-56)	प्राथमिक
दूसरी योजना (1956-61)	उच्चतर और तकनीक
तीसरी योजना (1961-66)	उच्चतर और तकनीक
चौथी योजना (1969-74)	उच्चतर और तकनीक
पांचवी योजना (1974-78)	उच्चतर और तकनीक
छठी योजना (1980-85)	उच्चतर और तकनीक
सातवीं योजना (1985-90)	उच्चतर और तकनीक
आठवीं योजना (1992-97)	प्राथमिक
नौवीं योजना (1997-2002)	प्राथमिक
दसवीं योजना (2002-07)	व्यावसायिक शिक्षा और विकास

तालिका : 5 केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा शिक्षा पर कुल खर्च (रुपये करोड़ों में)

मंत्रालय/विभाग

स्कूली शिक्षा और साक्षरता

राजस्व

पूंजी

उच्चतर शिक्षा

राजस्व

पूंजी

स्रोत : केंद्रीय बजट 2007-08, भारत सरकार

<http://www.indiabudget.nic.in/ub2007-08/eb/stat02.pdf>

तालिका 6 : केंद्र सरकार द्वारा शिक्षा, खेल, कला व संस्कृति पर कुल खर्च
(रुपये करोड़ में)

राजस्व खर्च

सामान्य शिक्षा

तकनीकी शिक्षा

खेल व युवा सेवाएं

कला व संस्कृति

पूंजी व्यय

शिक्षा, खेल कला व संस्कृति

ऋण व अग्रिम

शिक्षा, खेल कला व संस्कृति

स्रोत : केंद्रीय बजट 2007-08, भारत सरकार

<http://www.indiabudget.nic.in/ub2007-08/afs2.pdf>

<http://www.indiabudget.nic.in/ub2007-08/afs/afs4.pdf>

तालिका 7 : सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में शिक्षा, खेल, कला व
संस्कृति पर कुल खर्च (1990-91 से 2006-07)

मद

राजस्व खर्च

शिक्षा, खेल, कला व संस्कृति

पूंजी व्यय

शिक्षा, खेल, कला व संस्कृति

राज्य सरकारों द्वारा ऋण व अग्रिम

शिक्षा, खेल, कला व संस्कृति

सामाजिक क्षेत्र का कुल खर्च

स्रोत : राज्य सरकारों के बजट दस्तावेज

<http://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/publicatioins/pdfs/74898.pdf>

केंद्र सरकार के शिक्षा विभाग (MHRD) द्वारा किए गए बजटीय खर्च के आंकड़े (तालिका 5) यह दर्शाते हैं कि 2005-06 (वास्तविक) की तुलना में 2007-08 में आवंटन में वृद्धि हुई है हालांकि राजस्व खर्च की करीब पूरी संरचना को देखें तो इसमें अभी भी बदलाव नहीं हुआ है।

केंद्र सरकार के दूसरे विभागों द्वारा किया गया खर्च भी मुख्य रूप से राजस्व खर्च (तालिका 6) के बराबर ही है। इस प्रकार, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में शिक्षा पर किए गए व्यय की संयुक्त तस्वीर (तालिका 7) को देखें तो यह पता चल जाता है कि राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में कुल मिलाकर सामाजिक क्षेत्र पर खर्च में वृद्धि हुई है। 1990-91 से शिक्षा पर खर्च में करीब 16% की वृद्धि हुई है।

जनता पर बोझ ?

शिक्षा योजनाओं को वित्तीय संसाधन मुहैया कराने के लिए सरकार 2004-2005 में शिक्षा अधिकार लागू किया। 2007-08 का बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने शिक्षा अधिकार को 2% से बढ़ाकर 3% करने की घोषणा की। जबकि यह उम्मीद की जा रही है कि न केवल प्राथमिक बल्कि माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा में सार्वजनिक निवेश का कदम उठाया जाएगा। बड़ी आसानी से बड़े हुए खर्च का बोझ करदाताओं पर डाल दिया गया। एक प्रतिशत अधिभार बढ़ाने से 2007-08 में सरकार को 53 सौ करोड़ रुपए का अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होने की उम्मीद है। 2004-05 से जो 2% शिक्षा अधिभार लगाया गया उसका इस्तेमाल मिड-डें मील जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम में किया गया जिसका मकसद बच्चों को स्कूल की ओर खींचना है।

क्या आप जानते हैं?⁴

- * 2004-05 में सभी स्रोतों से प्राथमिक शिक्षा पर प्रति व्यक्ति सार्वजनिक खर्च 7255 रुपए था।
- * इसमें से एक बड़ा हिस्सा शिक्षकों के वेतन और दूसरी सुविधाओं पर खर्च हुआ।
- * 36.1% (32.7% लड़के और 39% लड़कियां) इसलिए दाखिल नहीं लेते कि वे स्कूल का खर्च नहीं उठा सकते। (दूसरे कारणों में स्कूल जाना नहीं चाहने वाले - 16.9%, स्कूल जाने की उम्र से काफी बड़े 14.1%, कामकाजी - 2.9% और दूसरे कारणों से 30%) इस तरह, आम धारणा के विपरीत ज्यादातर बच्चे

4. मोहंती, सीबा शंकर ईटी एएल, भारत में शिक्षा का अभियान पर बजटीय विश्लेषण और समर्थन के लक्ष्य के साथ प्रशिक्षण पुस्तिका, (अप्रकाशित), सेंटर फॉर बजट गवर्नेंस एकाउंटेंबिल्टी, 2007

इसलिए स्कूल में दाखिला नहीं ले पाते कि यह उनके लिए ज्यादा खर्चीला है। जबकि आम धारणा यही है कि काम करने के कारण वे स्कूल नहीं जा पाते। स्पष्ट है कि यह मिथक सरकार द्वारा प्रचारित है। स्कूली शिक्षा को मुफ्त बनाया जाए। (सीएजी रिपोर्ट नम्बर 15, 2006)।

- * इसी तरह स्कूल छोड़ने वाले दूसरे कारणों में जो बच्चों के स्कूल नहीं जाने का दूसरा सबसे बड़ा कारण है वह भी यही है कि वे स्कूली शिक्षा का खर्च वहन नहीं कर सकते (सीएजी रिपोर्ट नम्बर 15, 2006)
- * 2005-06 में भारत के औसत मां-बाप को एक साल में अपने बच्चों की प्राथमिक शिक्षा पर 701 रुपए और उच्च प्राथमिक शिक्षा पर 1281 रुपए अपनी जेब से खर्च करने पड़े। (एनएसएस 52वें दौर का आंकड़ा।)
- * 2005-06 में प्राथमिक शिक्षा पर कुल खर्च 126318 करोड़ रुपए था जिसमें से सरकार ने 89% योगदान दिया और 11% मां-बाप को खर्च करना पड़ा।
- * 1986 से देश में निजी स्कूल 7.9% थे जो 1986 में अचानक बढ़ कर 13.8% हो गए। 2005 तक तेजी से बढ़ते हुए यह 15.2% तक पहुँच गया।

शैक्षिक परिणाम और आधारभूत संरचना के अंश

शैक्षिक नीतियों और योजनाओं के लक्ष्य को शिक्षा विकास के तीन सिद्धान्तों के सहारे भौतिक रूप से प्राप्त किया जा सकता है। पहुंच, समानता और गुणवत्ता। नीचे दिए गए चार तालिकाओं (तालिका 7a से 7b) का समूह प्राथमिक शिक्षा की वास्तविकता का आइना है।

तालिका 7 (ए)

पहुंच में सुधार के सूचकांक : आपूर्ति पक्षीय हस्तक्षेप

विषय	2003	2005
1.1 कक्षा		
(ए) प्राथमिक से उच्च प्राथमिक का अनुपात	3.70 (1990-91)	2.68
(ब) प्रत्येक स्कूल में कक्षा के कमरों का औसत	कुल 3.50 ग्रामीण 3.20 शहरी 6.50	3.70 3.30 6.60
(स) कमरों की स्थिति		
(i) अच्छी स्थिति	55.50	63.36

(ii) ज्यादा मरम्मत की जरूरत	27.30	12.18
1.2 नामांकन		
(अ) कुल नामांकन अनुपात	89.4	97.82
(ब) छोड़ने की दर : 2003-04	31.5	20.64
(स) आगे बढ़ने का अनुपात 2003-04	82.84	97.82
(ड) दोहराने की दर 2003-04	5	4
(इ) प्राथमिक स्तर रिटेंशन दर (16 बड़े राज्यों के औसत पर आधारित) (2003-04)	53.43	58.11
		(2004-05)
1.3 शिक्षक :		
(अ) प्रत्येक स्कूल में शिक्षकों का औसत	कुल 2.71 ग्रामीण 3.41 शहरी 6.61	4.02 3.61 7.25
(ब) महिला शिक्षकों वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 36.60 ग्रामीण 30.53 शहरी 63.18	39.78 33.12 64.75
(स) बिना महिला शिक्षकों वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 37.52 ग्रामीण 40.93 शहरी 14.57	26.08 30.46 12.83
1.4 ढांचागत		
(अ) पीने का पानी की सुविधा वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 73.28	8.60
(ब) बिजली व्यवस्था वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 21.63	28.37
(स) पुस्तकालय व्यवस्था वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 41.04	43.54
(ड) कंप्यूटर व्यवस्था वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 7.02	43.54
(इ) बिना ब्लैक बोर्ड वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 7.02	8.99
(एफ) बिना भवन वाले स्कूलों का का प्रतिशत	कुल	3.96

नोट : ऊपर जो संकेतक दिए गए हैं वह सभी प्रबंधन (सरकारी और निजी) और भी स्कूलों (प्राथमिक, उच्च प्राथमिक / उच्च माध्यमिक) के हैं।)

स्रोत : 1 ए.सी. मेहता (जुलाई 2006), भारत में प्राथमिक शिक्षा (विश्लेषणात्मक

रिपोर्ट 2004-05), नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशन प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली

2. शबनम सिन्हा (2004), भारत में प्राथमिक शिक्षा, जे.एस. राजपूत, भारतीय शिक्षा का इन्साइक्लोपीडिया, भाग-1 (ए-के), राष्ट्रीय शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण परिषद (NCERT), नई दिल्ली, क्रम संख्या 101 (a) और 1.2 (a)

3. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1994), चुनिंदा शैक्षिक आंकड़े, 1993-94, शिक्षा, विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, क्रम सं. 1.2(b)।

तालिका 7 (बी)

पहुंच में सुधार के सूचकांक : मांग पक्षीय हस्तक्षेप

विषय	2002	2004
1. (अ) निगरानी वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 53.31	63.01
	ग्रामीण 56.30	66.30
	शहरी 36.45	43.25
(ब) निगरानी	कुल 58.44	56.71
	ग्रामीण 50.60	57.87
	शहरी 57.43	53.47
2. नियमित प्रधानाचार्य वाले स्कूलों	कुल 64.64	47.18
	ग्रामीण 49.95	46.68
	शहरी 58.56	53.79

स्रोत : मेहता (जुलाई 2006)

तालिका 7 (सी)

Indicators of Equity in School Education (स्कूली शिक्षा में समानता के संकेतक)

विषय	2003	2005
1. कुल नामांकन में लड़कियों के नामांकन का प्रतिशत (प्राथमिक कला I-VIII)	कुल 46.56	46.99
	ग्रामीण 46.15	46.79
	शहरी 48.28	47.85
2. कुल नामांकन में अनुसूचित जाति/जनजाति का प्रतिशत (प्राथमिक कला I-VIII)	अजजा 19.22	20.58
	अजा 11.04	10.18

3. अपंग बच्चों का नामांकन (प्राथमिक कक्षा I-VIII)	लड़कियां 386579 ग्रामीण 981164 शहरी 0.65	569460 1399343 0.69
--	--	---------------------------

नोट : जीपीआई : लिंग आधारित
स्रोत : मेहता (जुलाई 2006)

तालिका 7 (डी)

स्कूली शिक्षा में गुणवत्ता के सूचकांक

विषय	2003	2005
1. सेवा के दौरान प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत	कुल 32.19 ग्रामीण 35.48 शहरी 16.93	37.37 42.07 21.81
2. पठन-पाठन सामग्री पाने और उसका इस्तेमाल करने वाले स्कूलों का प्रतिशत	कुल 33.70 ग्रामीण 30.50 शहरी 16.44	61.81 65.11 42.50

स्रोत : मेहता (जुलाई 2006)

सरकारी अनुमानों के मुताबिक 2006 में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का अनुपात 17.9% है।⁵ मानव संसाधन विकास मंत्रालय का दावा है कि सर्व शिक्षा अभियान पर 16 हजार करोड़ रुपए खर्च करने के बाद स्कूल छोड़ कर गए पांच करोड़ बच्चों में से तीन करोड़ बच्चे लौट आए। हालांकि इन दावों की सावधानी से समीक्षा करने की जरूरत है।

अनुशांसाएं⁶

1. इस पृष्ठभूमि में जनता-बजट से पहले से शिक्षा पर पूर्व में प्रस्तुत मांगों के चार्टर पर की गई प्रगति का आकलन करना सही है। पांच विशेष मांगों की गई थीं :

1. एनसीएमपी के वादे के अनुसार जीडीपी के 6 प्रतिशत का शिक्षा का आबंटन – इस उद्देश्य की उपलब्धि में मुख्य बाधा एफआरबीएम के प्रति जुड़ाव (संसक्ति) ही बन रही है। एफआरबीएम को रद्द करना या शिक्षा को उसके क्षेत्र से बाहर रखना।

5. http://news.gov.in/draft_conditon_%20f_%20work%20_NCEUSApirl_2007.pdf

6. जनता बजट पहल (पीपुल्स बजट इनिशिएटिव) भारत बजट निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए नागरिक सामाजिक संगठनों का राष्ट्रीय समन्वय है। जानकारी के लिए देखें www.cbgaindia.org

चिंता के इस क्रांतिक क्षेत्र में सरकार के रुख में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वित्त मंत्री न सिर्फ एफआरबी एक्ट द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धि पर सख्त जोर डाल रहे हैं बल्कि शिक्षा को इसके क्षेत्र के अंतर्गत ही रख रहे हैं।

2. वर्तमान सीएसएस संस्थानों की स्वायत्ता को नजरअंदाज करते हैं। शैक्षणिक प्रशासन के लिए एक औपचारिक ढांचे का संधारण हो और संसाधन का निर्गम – एकल संस्थागत ढांचे के माध्यम से हों।

वस्तुतः हाल के अधिकांश नतीजे उसके उलट ही बताते हैं। एसएसए 2007 के प्लान XI के लिए उपसमूह का प्रतिवेदन यह खुलासा करता है कि संस्थानिक स्वायत्तता और अधिक केंद्रीकरण सन्निकत और इसके केंद्र में संसाधन निर्गम के लिए अधिक कड़े मानदंड बनाना और एतदर्थ बहुसंख्यक ढांचों को मौजूद करना।

3. बजट कलेन्डर के साथ-साथ समय पर कोष निर्गम की दृढ़ता बरकरार रखी जाए

फिर वही बात जो कभी नहीं हुई है और अनेक स्वतंत्र अध्ययन बजट कलेन्डर के साधारण का अभाव तो बताते ही हैं उप-राज्य स्तर पर बजट निर्माण की कमी के साथ-साथ बराबर होने वाली कोष के निर्गम में देर की ओर इशारा करते हैं।

4. बुनियादी शिक्षा के लिए नामांकन और इसकी सर्वव्यापकता की योजना अलग-अलग हो।

ही दूसरी गतिविधि इसके विपरीत बताती है। योजना आयोग के प्रस्तावाधीन है कि इ.सी.सी.ई. (आईसीडीएस का अंग) से समन्वित हो इससे यूईई के लक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की गुंजाइश बढ़ जाती है। साथ ही बजट के साथ नई योजनाओं का एलान (सक्सेस जो माध्यमिक शिक्षा पर केंद्रित हैं) से हम इसे विषय में सरकार की स्पष्टता और केंद्रस्थता पर अविश्वास ही कर सकते हैं।

5. प्राथमिक शिक्षा कोष उच्चतर शिक्षा की कीमत पर नहीं

यद्यपि केंद्रीय बजट 2007-08 में प्राथमिक और उच्चतर शिक्षा के मदों की लागत में अच्छी वृद्धि की गई प्रतीत होती है पर यह उल्लेखनीय है कि प्राथमिक शिक्षा मद में की गई वृद्धि एमडीएम की लागत में अतिरिक्त वृद्धि के रास्ते आई और इतनी ओर अनेक स्रोतों की आलोचना के अनुसार उच्चतर शिक्षा क्षेत्र दीर्घकाल से संकट की स्थिति व्याप्त है। इसमें अनेक काल से एक जैसी ही आधारभूत संरचना है जो वस्तुतः धीरे-धीरे घट ही रही है जबकि इस पर बढ़ता दबाव बढ़ ही रहा है। दशकों से पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं के अनुदानों में कोई वृद्धि नहीं हुई है। जबकि पुस्तकों, प्रयोगशाला के उपकरणों और वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए आवश्यक अन्य सामग्रियों की

कीमतों में कई गुणों वृद्धि हो चुकी है। रखरखाव और विकास अनुदान पर्याप्त है; विश्वविद्यालय और महाविद्यालय निजी स्रोतों से कोष जुटाने के लिए बाध्य हैं। एक ओर तो इन सबको अर्थ विद्यार्थियों पर कालेजों के द्वारा अनेकानेक शीर्षों पर शुल्क लगाए जाने से विद्यार्थियों पर बढ़ा हुआ बोझ बढ़ता ही जा रहा है और दूसरी ओर इससे दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वृहत्तर सामाजिक हित में उच्चतर शिक्षा के संकट से रूबरू होने की जगह आने वाली हर सरकार यह दलील दे रही है कि विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को निजी स्रोतों से शुल्क बढ़ाकर कोष एकत्र करना चाहिए। ये दोनों प्रस्ताव उच्चतर शिक्षा की प्रवृत्ति के साथ-साथ समाज के विभिन्न वर्गों तक इसकी उपलब्धि की दृष्टि से घातक परिणामों से भरे हुए हैं।

2008-09 की मांगों का घोषणा पत्र

1. शिक्षा का मौलिक अधिकार – संविधान के तहत बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की सुविधा मुहैया कराने के बाद अब यह जरूरी है कि इस अधिकार को न्यायोचित बनाया जाए। हालांकि कुछ राज्यों ने मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कानूनी प्रावधान किए हैं। मगर इसे 'बाध्यकारी' बना कर कानून में किसी राज्य ने अभी भी नहीं जोड़ा है। इसके लिए दूसरी कानूनी प्रावधान जरूरी हैं। केंद्रीय कानून में मजबूत (अधिकार आधारित) और बाध्यकारी प्रावधान किए जाने के बाद राज्य स्तर पर अब न्यूनतम आवश्यकता है।
2. शिक्षा के लिए जीडीपी का 6% – पिछले चालीस साल से उठाई जा रही यह मांग अभी भी अधूरा है। सरकार को इस वादे को पूरा करने के लिए विशेष खाका और निश्चित योजना के साथ सामने आना चाहिए।
3. राष्ट्रीय सलाहकार समिति (2006) द्वारा प्रस्तावित शिक्षा में प्रदर्शन की माप को स्कूलों में प्रति बच्चा खर्च और विभिन्न शैक्षिक खर्च और प्रशासनिक ढांचे के संदर्भ में जरूर देखा जाना चाहिए। इसी से जुड़ा यह मुद्दा भी है कि शिक्षा पर हुए खर्च, इससे मिलते जुलते काम में आने वाले दूसरे आधिकारिक दस्तावेज की सूचना आसानी से उपलब्ध कराई जाए।
4. स्कूल प्रबन्ध समिति के माध्यम से अधिकारों का विकेंद्रीकरण और प्रत्यायोजन ताकि स्वायत्त प्रबंधन हो। समिति को स्कूल स्तर पर प्रति बच्चा मिलने वाले अनुदान का हिसाब रखने और वित्तीय अधिकार भी मिले।
5. हालांकि सरकार ने हाल ही में उच्च शिक्षा पर ध्यान देने के लिए नई योजना की घोषणा की है, इसका अर्थ यह नहीं हो कि एक पर ध्यान केंद्रित करने के लिए दूसरे को किनारे कर दिया जाए। साथ ही, किसी योजना के किसी हिस्से को दूसरी योजना

में शामिल करने पर उस पर अमल करने से पहले इस बात की बारीकी से जांच की जउए कि उसका केंद्र तो नहीं खो रहा है।

6. भारतीय शिक्षा के सामने गुणवत्ता की भी चुनौती है जिसके कई आयाम हैं। जैसे कि पर्याप्त आधारभूत संरचना और सुविधाएं मुहैया कराना, पर्याप्त आधारभूत संरचना और सुविधाएं मुहैया करना, पर्याप्त अच्छे शिक्षकों की उपलब्धता, सीखाने-पढ़ाने की प्रभावशाली प्रक्रिया, छात्रों की प्राप्ति का स्तर इत्यादि।

केन्द्रीय बजट में स्वास्थ्य

केंद्र के लिए बजट और प्रशासनिक जिम्मेदारी (सीबीजीए)¹

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का दृश्य विषमताओं से भरा हुआ है। ज्यादातर भारतीय उन बीमारियों से ग्रसित हैं जो आसानी से ठीक होने वाला हैं जबकि अभी भी लाइलाज बीमारियों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। समाज का एक बड़ा तबका गंदा पानी पीने से और गंदगी से होने वाली बीमारियों से मर जाता है। नीतिनिर्धारकों की अपनी रुचि अभी भी उन्नत तकनीक को मंगाने, स्वास्थ्य पर्यटन को बढ़ाव देने के लिए धन मुहैया कराने, उन्नत यंत्रों को आयात करने के लिए सब्सिडी देने और निजी स्वास्थ्य सेवाओं के विकास पर है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की रीढ़ की हड्डी माना जाने वाला ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा पूरी तरह से धाराशायी हो चुका है। यहां बुनियादी जरूरतों, कर्मचारियों और जरूरी दवाओं की कमी है। इन्हें मजबूत बनाने की जगह निजी क्षेत्र को सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल बनाने के लिए सब्सिडी दी जा रही है ताकि विदेशी पर्यटक यहां अपना इलाज कराने आ सकें। भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था अभी भी विश्व में सबसे ज्यादा निजी हाथों में है जो लागों की जेब ज्यादा काटती है। अभी भी इस क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा निजी निवेश करने की ही रणनीति है। इसका सीधा मतलब यही है कि समाज के कुछ खास वर्गों पर ही ध्यान केंद्रित किया जा रहा है जबकि एक बड़ा तबका उपेक्षित है।

भारतीय स्वास्थ्य परिदृश्य के कुछ तथ्य

बाल स्वास्थ्य

- * प्रति एक हजार में से 58 बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं जो ज्यादा है। (एसआरएस-2005)
- * 35% जिलों में बच्चों का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत एक हजार पु+ष पर 927

1. केन्द्रीय बजट 2008-09 के राष्ट्रीय सम्मेलन की भूमिका इंद्रनील मुखोपाध्याय और भूमिका झांब ने लिखी।

महिला से कम है।

- * प्रति मिनट तीन बच्चों की मौत पूरी तरह से अनदेखी की वजह से होती है। हर साल पांच साल से कम उम्र के 18 लाख बच्चे मरते हैं।
- * प्रति मिनट तीन बच्चों की मौत पूरी तरह से अनदेखी की वजह से होती है। हर साल पांच साल से कम उम्र के 18 लाख बच्चे मरते हैं जिनकी अनदेखी की जाती है। (10वीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज)। पांच साल से कम उम्र के 60% बच्चों की जान बचाई जा सकती है।
- * विश्व का हर तीसरा कुपोषित बच्चा भारत में रहता है। (MWDCD Report - 2007)
- * भारत के हर दूसरे बच्चे का वजन कम है। (MWDCD Report - 2007)
- * कम वजन वाले 46% बच्चे पैदा होते हैं। (NFHS-III)
- * पांच में से चार बच्चों में खून की कमी होती है। (NFHS-III)

मातृ स्वास्थ्य

- * प्रति एक लाख में से 301 महिलाओं की मौत बच्चे को जन्म देते समय हो जाती है। (एसआरएस, 2001-03)

बीमारियां

- * भारत में संक्रामक, मातृ रोगों और पोषण के अभाव में सबसे ज्यादा 30% लोग मरते हैं। (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की 2006-07 की सालाना रिपोर्ट)।
- * संक्रामक रोगों का फिर से फैलना। 2005 में डेंगू के प्रकोप से 12754 मामलों में से 215 और 11985 मामलों में से 157 के मरने का दावा किया गया।
- * भारत के 85 लाख टीबी से ग्रसित हैं। हर साल 18 लाख नए मामले सामने आते हैं और करीब तीन लाख 70 हजार लोग टीबी से मर जाते हैं। (स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय की सालाना रिपोर्ट 2006-07)
- * मलेरिया के आठ लाख और पीएफ के तीन लाख मामलों में 819 की मौत हो गई। (रिपोर्ट 17.11.2206 तक)

राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम

स्वास्थ्य क्षेत्र के इस रूखे परिदृश्य को देखते हुए यह समझना बहुत जरूरी है कि भारत सरकार की स्वास्थ्य पर व्यापक नीति की दिशा क्या है। दूसरे क्षेत्रों की तरह स्वास्थ्य नीति भी राजनीतिक बदलाव का विषय है और सत्ताधारी गठजोड़ के वर्ग चरित्र पर

बहुत हद तक निर्भर करता है। राजग सरकार की नवउदारवादी नीति को 2004 के आम चुनाव में जनता ने ठुकरा दिया और उसके बाद बनी यूपीए की सरकार ने सावधानी बरतना शुरू कर दिया। यूपीए का राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम जो सरकार की व्यापक दिशा नीति का खाका है में स्वास्थ्य संकट के तुरंत समाधान को मान्यता मिली और यह तय किया गया कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा पर जीडीपी का 2 से 3% जो उस समय 1% था, खर्च किया जाएगा। जनसंख्या के लिहाज से न्यूनतम बुनियादी स्वास्थ्य सेवा पर सरकार को जितना खर्च करने की जरूरत है उसके मुकाबले यह सबसे कम है लेकिन वास्तविक मायने में यह खर्च बहुत है और अगर इसे साकारकर दिया जाए तो पूरी आबादी के स्वास्थ्य पर इसका आमूल चूल बदलाव हो सकता है। इस संदर्भ में यह निर्णायक है कि यूपीए अपने वायदे को पूरा कर रही है और उस क्षेत्र में भी खर्च कर रही है जहां जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग है। कितना सुधार होता है यह इस पर निर्भर करता है कि सरकार कितनी अच्छी तरह से संचालित करती है और अपने संसाधनों को खर्च करती है। साथ ही भारत की जनता सरकार अपने वायदों को पूरा करने के लिए कितना दबाव डालती है।

स्वास्थ्य ढांचा

- * 2001 की जनगणना के मुताबिक 21983 उप-स्वास्थ्य केंद्रों, 4436 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और 3332 मुख्य स्वास्थ्य केंद्रों की कमी है। 50% स्वास्थ्य केंद्र किराए के मकान में चल रहे हैं।
- * ग्रामीण इलाकों में अस्पताल के बिस्तारों का अनुपात शहरी इलाकों की तुलना में 15 गुणा कम है।
- * शहरी आबादी के लिए उपलब्ध डॉक्टरों का अनुपात ग्रामीण इलाकों की जनसंख्या के लिए उपलब्ध डॉक्टरों से छह गुणा ज्यादा है। (भारत की स्वास्थ्य सूचना 2000-01)

नीतिगत मसला : कुछ विमर्श

पिछले कुछ सालों में ऐसे बहुत महत्वपूर्ण फैसले किए गए जिससे भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र के विकास पर भारी बोझ पड़ा है। 2002 में राष्ट्रीय स्वज्ञस्थ्य नीति का बनना, 2005 में तीसरे पेटेंट संशोधन विधेयक को मंजूरी, 2006 में राष्ट्रीय दावा नीति का बनाना, 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का लागू होना, सेवा क्षेत्र में व्यापार विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) से वार्ता शुरुआत ताकि आम समझौता हो सके। हम यहां उन नीतियों की चर्चा करेंगे जिससे यह समझा जा सके कि भारत में स्वज्ञस्थ्य नीति की मौलिक दिशा क्या है और इसे यूपीए सरकार के वायदों से जोड़ने का भी प्रयास करेंगे।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002

- * व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा के बदले वास्तविक क्षमता के आधार पर उपलब्धता पर आधारित स्वज्ञस्व्य सेवा को लोगों तक पहुंचाने का प्रयास।
- * स्वास्थ्य क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा देने की दिशा में कोई ठोस पहल नहीं बल्कि सार्वजनिक सेवा को कमजोर किया गया। ज्यादा ध्यान यूजर चार्ज पर।
- * बृहद नियंत्रण से निजी स्वास्थ्य सेवा पर निर्भरता।
- * जनसंख्या नियंत्रण योजना को विघटित करना।
- * दवाओं के मूल्य और उत्पादन पर चुप्पी।
- * विदेशी मुद्रा को आकर्षित करने और स्वास्थ्य पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सुपर स्पेशियलिटी स्वास्थ्य सुविधाओं के निर्माण को उच्च प्राथमिकता।

राष्ट्रीय दवा नीति, 2002

- * दवाओं के मूल्य पर नियंत्रण को धीरे-धीरे घटाना।
- * केवल 25 दवाएं नियंत्रण में।
- * दवा निर्माण में सौ फीसदी विदेशी निवेश।
- * सभी लाइसेंसिंग नियमों की वापसी।
- * नियंत्रण के तीरके में बदलाव : अनिवार्यता के बदले एकाधिकार पर ज्यादा जोर।

राष्ट्रीय दवा नीति, 2006

- * 354 जरूरी दवाओं और 74 जीवन रक्षक दवाओं पर नियंत्रण की प्रस्तावना।

पेटेंट (संशोधन) अधिनियम, 2005

- * 1970 के पेटेंट अधिनियम, तीसरा संशोधन
- * प्रक्रिया पेटेंट प्रणाली की जगह उत्पाद पेटेंट।
- * बड़ी दवा कंपनियों की एकाधिकारवादी शक्ति को मजबूती देना और सरकार की उन्हें नियंत्रित करने की क्षमता में भारी कटौती।
- * शुरूआती विधेयकों में बदलाव : सॉफ्टवेयर पेटेंट कराना खारिज, पेटेंट के पूर्वानुमति विरोध को संरक्षण, उत्पादन क्षमता के बिना भी निर्यात का विकल्प।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना 2005

- * गुणवत्तापरक स्वास्थ्य सेवा की पहुँच और उपलब्धता में सुधार खास कर ग्रामीण इलाकों में रहने वालों, गरीब, महिला और बच्चों के लिए।
- * केवल 18 राज्यों पर मुख्य रूप से केंद्रित।
- * आशा (ASHA) योजना की प्रस्तावना।
- * आरसीएच-III, एकीकृत बीमारी निगरानी योजना और आयुष (AYAUS) का सर्वसंग्रह।

सेवा क्षेत्र में व्यापार पर आम समझौता

- * सेवा क्षेत्र में बढ़ते उदारीकरण के लिए खाका तैयार करना।
- * विदेशी कंपनियों के साथ घरेलू कंपनियों जैसा बरताव।
- * आवश्यक सामाजिक सेवाओं पर राज्यों के दखल पर प्रतिबंध ताकि इसे एकबारगी खोला जा सके।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002

एक समय जब नव उदारवादी नीति का प्रभाव हमारे जीवन के हर पहलू पर दिखने लगा ऐसे में यह असंभव है कि निरंकुश उदारीकरण के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य एक सामाजिक क्षेत्र के रूप में बचा रहेगा। अब हम हाल की नीति के विकास के कुछ पहलुओं की चर्चा करेंगे जिससे हमें यह पता चला सकेगा कि हमारे देश के उपेक्षित वर्ग के लिए इसका वास्तविक मायने क्या है। सबसे महत्वपूर्ण विकास दो दशक बाद लागू हुआ राष्ट्रीय स्वज्ञस्थ नीति 2002 है। पहली राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 1983 का मुख्य केंद्र प्राथमिक स्वास्थ्य को व्यापक बनाना था। दुर्भाग्य से राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 में इस विचार को स्थगित कर दिया गया और इस धारणा को लागू किया गया कि स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को बढ़ाया जाए। हालांकि इस नीति में कुछ विरोध भास है। एक तरफ जहां इस बात को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई गई है कि बहुत सी ऐसी बीमारी जिसका इलाज संभव है उसका व्यापक तरीके से प्रचार प्रसार नहीं किया गया। रुग्ण राज्यों की सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर असंतोष जताया गया। साथ ही स्वास्थ्य क्षेत्र में सरकारी संसाधन की कमी को भी स्वीकार किया गया है। वहीं दूसरी तरफ सार्वजनिक प्रबंध के लिए संसाधन जुटाने की किसी ठोस योजना की इस नीति में कमी है और इन सारी समस्याओं के समाधान के लिए सारा जोर निजी स्वास्थ्य सेवाओं के बृहद् विकास पर दिया गया है। हालांकि निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर निगरानी रखने के लिए वृहद् नियामक की इस नीति में व्यवस्था की गई

है। भारत के संदर्भ में इसकी जरूरत ज्यादा थी क्योंकि दुनिया भर में बहुत कम ही निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकार की निगरानी व्यवस्था है। आवश्यक दवाओं की पहुंच की भी राष्ट्रीय स्वज्ञस्थ नीति 2002 में अनदेखी की गई है। इस तरह राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 सिर्फ अलंकृत शब्दों के मायाजाल का गवाह बन कर रह गया और प्राथमिकताएं गायब रही।

राष्ट्रीय दवा नीति

भारत की 80 फीसदी आबादी तक आवश्यक दवाएं पहुंच नहीं पाती हैं और दवाएं खरीदना अभी भी उनकी जेब पर भारी पड़ती है। इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि आवश्यक है। दवाओं की पहुंच को आसान बनाने को बड़ी प्राथमिकता दी जाए। लेकिन 2002 में तैयार किए गए राष्ट्रीय दवा नीति में आम लोगों के लिए यह बड़ा झटका था कि इसमें आवश्यक दवाओं की कीमत पर सरकारी नियंत्रण को घटाने और दवा निर्माण में सौ फीसदी विदेशी निवेश का प्रस्ताव किया गया था। इस प्रस्ताव का समाज के कई तबकों द्वारा विरोध किया गया। बाद में यूपीए सरकार ने इसमें संशोधन करते हुए राष्ट्रीय दवा नीति 2006 तैयार किया। इसमें सभी 354 आवश्यक दवाओं और 74 जीवन रक्षक दवाओं पर नियंत्रण का प्रस्ताव था। निश्चित रूप से प्रगतिशील कदम होते हुए भी इस नए मसौदे में कुछ समस्या थी। दवा उद्योग, खासकर बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस नीति की खुलकर आलोचना करने लगीं। आखिरकार यूपीए सरकार को दबाव में झुकना पड़ा और इस विधेयक को उसने ताक पर रख दिया। इससे यह साफ हो गया कि यूपीए सरकार घरेलू कंपनियों के हित को बनाए रखने को इच्छुक है। जबकि दवा की कीमतों पर नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रास नहीं आया जिसका फायदा पूरे देश को मिलता।

तीसरा पेटेंट (संशोधन) अधिनियम, 2005

नीतियों में दूसरा सबसे महत्वपूर्ण बदलाव तीसरा पेटेंट (संशोधन) अधिनियम, 2005 है जो दवाओं के निर्माण के तरीकों में पूरी तरह से बदलाव ला देगा। भारत डब्ल्यूटीओ समझौते से बंधा है जिसके तहत प्रक्रिया पेटेंट को धीरे-धीरे उत्पाद पेटेंट में बदलना होगा। यह विधेयक जनमत संग्रह के रूप में पेश किया गया है जिसे संसद ने उसी रूप में मंजूरी दे दी। इसने डब्ल्यूटीओ के तहत प्रस्तावित विशेष सुरक्षा की छानबीन की भी कोशिश नहीं की। इस विधेयक का नाम वाम दलों और दूसरे प्रगतिशील तबकों ने जोरदार विरोध किया। आखिरकार सुरक्षा कवच के रूप में इस विधेयक में सामानान्तर आयात और आवश्यक लाइसेंसिंग जैसे प्रावधान को शामिल किया गया। अब इस बदलाव का स्वागत है। हम समझ सकते हैं कि उत्पाद पेटेंट उन छोटे घरेलू उत्पादकों के लिए काफी नुकसानदेह है जिनके बारे में लाखों लोग बात नहीं करते। प्रक्रिया पेटेंट

से मालामाल हुई भारतीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों में से ज्यादातर अब उस स्थिति में हैं जो उत्पादन पेटेंट के तहत अच्छा प्रदर्शन कर रही हैं। भारत में दवा नीति के दिशा निर्देश लागू होने से अब वे उत्पादन पेटेंट के पक्ष में आवाज उठाने लगे हैं। लेकिन छोटे और मध्यम उत्पादकों को आगे चलकर इसका नुकसान हो रहा है और इनकी संख्या ज्यादा है। इस सन्दर्भ में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि संशोधन को पूरी तरह से बाहर कर दिया जाए। लेकिन भारत और इस जैसे विकासशील देशों के लिए यह संभव नहीं है क्योंकि वे डब्ल्यूटीओ से नहीं लड़ सकते।

सेवा क्षेत्र में व्यापार पर आम समझौता

एक और महत्वपूर्ण नीति पर जो कदम उठाया गया है वह सेवा क्षेत्र में व्यापार पर आम समझौता है जिसका वृहद परिणाम स्वास्थ्य सहित सभी सेवा क्षेत्र पर पड़ सकता है। स्वास्थ्य मंत्रालय की मनोदशा भांपते हुए वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने सुझाव दिया कि इसे लागू करने से वे काफी उत्साहित हैं। दुर्भाग्यवश कुछ कारणों से उनका उत्साह ठंड पड़ गया। गैट समझौते को लागू करने का मतलब है सेवा क्षेत्र का प्रगतिशील उदारीकरण और विदेशी कंपनियों के साथ घरेलू कंपनियों जैसा बरतावा। साथ ही अगर राज्यों ने एक बार अपने क्षेत्र को खोलने की इजाजत दे दी तो उन पर प्रतिबंध लगाने का मौका उन्हें गंवाना होगा। उनके पास दखल के सीमित मौके होंगे जिससे लाखों गरीब स्वास्थ्य सेवा से पीछे छूट सकते हैं और उन्हें निजी सेवा प्रदाताओं के रहमो करम पर निर्भर रहना पड़ेगा। विकासशील देशों सहित विश्व के प्रगतिशील तबकों ने सेवा क्षेत्र के समझौते में आरक्षण देने की मांग की। आवश्यक सेवा क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पानी को गैट से अलग रखने के जोरदार तरीके से आवाज उठाई गई। डब्ल्यूटीओ के कानकुन दौर में शर्मनाक तरी से गैट के खिलाफ लड़ने की जगह भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने विकासशील देशों को कमजोर बनाने में प्रमुख भूमिका अदा की।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना

स्वास्थ्य पर यूपीए सरकार की झंडाबरदार योजना राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना को 2005 में लागू किया गया। इसका मकसद गुणवत्तापकर स्वास्थ्य सेवा की पहुँच और उपलब्धता में बढ़ोतरी करना है। खासकर गरीबों, महिलाओं, बच्चों और ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए। हालांकि इसमें व्यापक सेवा की बात कही गई है लेकिन राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना कुछ योजनाओं और कार्यक्रमों का केवल समूह है। आशा (ASHA) को छोड़कर कोई भी नई पहल नहीं है। आगे इस कार्यक्रम की सफलता इस पर लगातार निगरानी से ही निश्चित हो सकती है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना की कुछ स्वतंत्र समीक्षाएं यह दर्शाती हैं कि कार्यक्रमलाप में कुछ ही सुधार हुआ

है और इस ओर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।³ योजना पर निगरानी रखना एक समस्या है। इस योजना का फायदा लोगों तक पर्याप्त रूप से नहीं पहुंच पा रहा है। सिद्धान्त रूप में तो इस योजना में प्राथमिक और जिला स्तर पर क्षमता के विकास की बात कही गई है लेकिन इस दिशा में बहुत कम काम हुआ है। नीति निर्माताओं

2. 13-18 दिसम्बर, 2005 तक डब्ल्यूटीओ मंत्रीस्तरीय वार्ता जो हांगकांग में हुई उसमें कुछ महत्वपूर्ण विकास हुआ। जो मसौदा हांगकांग में हुई उसमें कुछ महत्वपूर्ण विकास हुआ। जो मसौदा हांगकांग पहुंचा था उसमें पूरा एनेक्स C था। इसमें मूलरूप से सेवा क्षेत्र में उदारीकरण को बढ़ाने की वकालत, पूरे उद्घरण में किसी समझौते के महत्व की कमी थी। अंतिम मसौदे में कोष्ठक को हटा दिया गया और पूरे एनेक्स C को स्वीकार कर लिया गया। समझौते के मौजूदा रूप में गैट के बुनियादी ढांचे को पलट दिया गया। शुरुआत में गैट में समझौते का खाका की अवधारणा थी जिसमें कहा गया था कि आर्थिक विकास और राष्ट्रीय आवश्यकताओं के मुताबिक सदस्य देश अपने सेवा क्षेत्र को अनिवार्य रूप से उदार बनाने का वायदा करने की सहमति देंगे। एनेक्स C का पैरा 7 बाहुल्य आधार पर समझौता प्रस्ताव की अपील पर जोर देता है जो लीचीलेपन को कमजोर बना देगा। समूह-90 के तहत कई देशों ने सेवा क्षेत्र पर मंत्रीस्तरीय उद्घरण (एनेक्स सी) के मसौदे का विरोध किया। समूह-90 ने एक वैकल्पिक मसौदा पेश किया। दुर्भाग्यवश भारतीय प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख, वाणिज्य मंत्री कमलनाथ ने विकसित देशों का पक्ष लेते हुए विकासशील देशों पर समूह-90 के प्रस्ताव को छोड़ देने और एनेक्स सी को स्वीकार कर लेने का दबाव डाला।

शर्मनाम रूप से कमलनाथ और उनके सहयोगियों ने मोड 1 और मोड 4 के फायदे का दुष्प्रचार करना शुरू कर दिया जिसका मतलब बीपीओ को छूट और एच 1 बी बीजा में बढ़ोतरी था। हालांकि उन्होंने मोड 3 के मलसे पर पूरी तरह से चुप्पी साध ली जिसमें स्वास्थ्य, उच्च शिक्षा जैसे सेवा क्षेत्रों में विदेशी निवेश की अनुमति दी गई थी। इस समझौते को अंतिम रूप देने की समय सीमा अक्टूबर 2006 तक थी जो खत्म हो चुकी है। कृषि सब्सिडी जैसे मुद्दे पर डब्ल्यूटीओ में करीब-करीब गतिरोध बरकरार है। लेकिन यहां संतोष की बात कम ही है क्योंकि अगर एक बार समझौता वार्ता शुरू हुई तो भारत को मुश्किल हालत का सामना करना पड़ेगा। खासकर स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों और संवेदनशील आर्थिक क्षेत्रों जैसे बीमा और बैंकिंग को व्यापार के लिए खोलने की जो तत्परता सरकार ने दिखाई है जिससे लाखों लोगों का हित जुड़ा हुआ है। इसका फायदा कुछ हजार प्रशिक्षित लोगों और बीपीओ क्षेत्र को ही हो रहा है।

3. सहयोग और उसके सहयोगियों द्वारा उत्तर प्रदेश में जननी सुरक्षा योजना पर किए गए अध्ययन दर्शाते हैं कि हालांकि परिवार वाले अपने अधिकारों के बारे में जानते हैं और वे महिलाओं को प्रसव के लिए स्वास्थ्य केंद्रों में ले जाने का फैसला करते हैं, यहां तक कि कुछ इलाकों में आशा कार्यकर्ता मौजूद हैं फिर भी मातृत्व स्वास्थ्य सेवा में महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो पाया है।

ने गांवों के विकास क्षमता को बढ़ाने के लिए कुछ नहीं किया। सच्चाई यह है कि अगर स्थानीय सरकारों ने इस योजना को साकार किया होता और स्थानीय जरूरतों के मुताबिक राशि वितरित करने की स्वायत्तता होती तो ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था में कई परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं की दिशा में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना आधे-अधूरे मन से किया गया प्रावधान है।

उपर्युक्त समीक्षा से यह पता चलता है कि हालिया नीतिगत पहल खोखला है और सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के बेहतर कार्यान्वयन के विकास के लिए ठोस नीति निर्देश देने में कमजोर है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया है कि इन नीतियों की दिशा निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था को बढ़ाने की है। निजी स्वास्थ्य सेवा की अविश्वसनीयता और उपेक्षित तबके की जरूरतों को पूरा करने की उनकी अक्षमता जगजाहिर है। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बड़ा प्रभाव घरेलू नीतियों पर रहता है और सरकारी पूरी अनिच्छा से कुछ भी करती है जो उनके व्यापार को बढ़ाने में मददगार हो सकती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ी आबादी तक व्यापक पहुँच बनाने की दिशा में सरकार के रुख में बड़ा परिवर्तन हुआ है और आवश्यक दवाएं तो अभी भी दूर की कौड़ी हैं।

अर्थ प्रबन्ध का मुद्दा

देश भर में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की भयानक स्थिति और शोषित तबके स्वास्थ्य की हालत को देखते हुए राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के तहत मौजूदा केंद्र की यूपीए सरकार ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा पर पांच साल के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का कम से कम 2-3% खर्च करने का प्रावधान किया जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा पर ध्यान केंद्रित किया गया। यह बड़ा वायदा था जिसने विभिन्न प्रगति समूहों को आगे बढ़ाने में मदद की। दुर्भाग्यवश यूपीए सरकार के चार साल कार्य काल में यह हकीकत से कोसों दूर है। हालांकि निर्बाध रूप से केंद्र सरकार के खर्च में वृद्धि हुई है लेकिन वास्तविक अर्थों में यह वृद्धि अपर्याप्त है। जबकि जीडीपी और मुद्रास्फीति की दर बढ़ी है। 2003-04 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य आंकड़ों के मुताबिक सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च जीडीपी के अनुपात में केवल 0.9% था। इस स्तर पर को बढ़ा कर जीडीपी के 2-3% तक लाने का मतलब यह है कि न केवल केंद्रीय खर्च को बढ़ाने का कदम उठाया जाए बल्कि राज्य सरकारों को भी अपने खर्च को बढ़ा कर मदद देनी चाहिए।

स्वास्थ्य पर खर्च

- * भारत सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र पर अपने जीडीपी का केवल 0.9% खर्च करते हैं जो विकसित देशों के औसत के एक तिहाई से भी कम है। (डब्ल्यूएचओ रिपोर्ट,

2003)।

- * 84 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवा लोगों की जेब से बाहर है।
- * अस्पताल में भर्ती 40% लोग इलाज के लिए उधार लेने या अपनी परिसंपत्ति को बेचने के लिए मजबूर होते हैं। (42वां और 52वां एनएसएस)
- * सिर्फ 20% आबादी की पहुंच अनिवार्य औषधि तक है। (जन-स्वास्थ्य अभियान, 2004)

हालांकि 2004-05 के बजट से कुछ वृद्धि हुई लेकिन यह जरूरत के लिहाज से काफी कम है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर केंद्र सरकार का खर्च 2005-06 के 9649.24 करोड़ रुपए से बढ़कर 2006-07 से 11757.74 करोड़ रुपए तक पहुंच गया। 2007-08 में यह और बढ़कर 15854.88 करोड़ रुपए हो गया (तालिका 1)। हालांकि यह 2006-07 में राष्ट्रीय स्तर पर जीडीपी का करीब 1% ही रहा।

2007-08 में पिछले सालों की तुलना में केंद्र सरकार ने आवंटन में महत्वपूर्ण वृद्धि कि जिसने आम जनता को कुछ राहत पहुंचाई

स्वास्थ्य पर जीडीपी का कुल प्रतिशत खर्च में तेज वृद्धि यह दर्शाता है कि प्रवृत्ति बदली है। लेकिन रिपोर्ट में इस सच्चाई पर नाखुशी भी जाहिर की गई है कि प्रत्येक साल बजट में आबंटित खर्च की राशि से वास्तविक खर्च की राशि लगातार घटती रही है। रिपोर्ट के मुताबिक 2005-06 में आबंटित 93332 करोड़ रुपए से संशोधित अनुमान में करीब एक हजार करोड़ रुपए (85 करोड़ रुपए) क कटौती हुई और वास्तविक खर्च के लिए 8076.76 करोड़ रुपए ही रहा। हालांकि हर साल गैर-योजना कोष की उपयोगिता बजट अनुमान आवंटन से ज्यादा है। इससे यह सफ है कि स्वास्थ्य योजनाओं के योजना कोष को गैर-योजना खर्च की ओर मोड़ दिया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि केंद्रीय स्वास्थ्य संस्थानों और योजनाओं के लिए कोष में कमी होती है।⁴ स्वास्थ्य पर केंद्र और राज्यों का पूंजीगत खर्च पिछले दो दशकों से चिंता का कारण है गौरतलब यह भी है कि स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का वास्तविक खर्च बजट अनुमानों से काफी कम है और समय के साथ इसमें वृद्धि हो ती जा रही है।

बजट खर्च और वास्तविक खर्च का अंतर

इससे भी आगे जाते हुए स्थायी समिति ने विभाग के कुल बजट में बाहरी सहयोग को शामिल करने की परंपरा पर गहरी नाराजगरी जताई। 2006-07 के घरेलू बजट में 1299007 करोड़ रुपए की बाहरी सहायता को शामिल कर लिया गया। समिति का मानना है कि अगर बाहरी सहायता को घरेलू बजट में शामिल करने की परंपरा जारी रही तो स्वास्थ्य क्षेत्र में जीडीपी का 2-3% राशि आबंटित करने का सरकार का वादा

केवल कागजों तक ही सीमित रह जाएगा और यह हकीकत नहीं बन जाएगा। इससे भी ज्यादा समिति ने यह महसूस किया कि बाहरी सहायता में गैर-योजना खर्च का वित्त प्रबंधन अच्छी बात नहीं है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत खर्च

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के वित्त प्रबंधन से यह प्रदर्शित होता है कि इसमें चुनिंदा क्षेत्रों पर ज्यादा ध्यान केंद्रित किया गया है और व्यापकता के पहलू को नजरअंदाज कर दिया गया है। इस योजना के दस्तावेज के मुताबिक 2005-06 के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का शुरूआती आवंटन 67 सौ करोड़ रुपए किया गया जिसे अगले साल 30% बढ़ाया जाना था। लेकिन 2005-06 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के लिए अलग से किसी प्रमुख की नियुक्ति नहीं हुई और योजना की राशि का इस्तेमाल हुआ। 2005-06 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना पर योजना व्यय 6075.17 करोड़ रुपए था। 2006-07 में व्यय में वृद्धि हुई और यह 7155.97 करोड़ रुपए (संशोधित अनुमान) तक पहुँच गया। इसी तरह 2007-08 में वृद्धि से यह बढ़कर 9801 करोड़ रुपए (बजट अनुमान) हो गया। इन सालों में गैर-योजना व्यय करीब-करीब स्थिर रहा जो 2005-06 में 32.20 करोड़ रुपए (संशोधित अनुमान), 2006-07 में 34.40 करोड़ (बजट अनुमान) था। नीचे दी गई तालिका में यह स्पष्ट है कि दो सालों में संशोधित अनुमान बजट अनुमान से लगातार कम रहा। यहां तक कि प्रत्येक साल आवंटन 30% बढ़ाने के वायदे का उल्लंघन हुआ। इसमें अनुमानित वृद्धि 18-20% हुआ जबकि वास्तविक वृद्धि इससे भी कम है। इससे अधिक आवंटन में करीब 80% वृद्धि चार क्षेत्रों एचआईवी/एड्स कार्यक्रम, आरसीएच, चिकित्सा शिक्षा और आयुष में हुई। वहीं प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के ढांचे को मजबूती प्रदान करने की योजना को पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत खर्च (रुपए हजार में)

बीई (बजट अनुमान), आरई (संशोधित अनुमान)

केंद्र सरकार ने 2007-08 के बजट में एड्स निरोधक 10 और कैसर निरोधी 14 दवाओं पर से सीमा शुल्क घटाकर (5% किया गया) कीमतों में कमी लाने की दिशा में कुछ सकारात्मक कदम उठाए। 2006-07 के बजट प्रस्ताव में भी कुछ जीवन रक्षक दवाओं, किट और उपकरणों पर से 15 प्रतिशत ड्यूटी को घटाकर 5 प्रतिशत तक किया। इन दवाओं को उत्पाद शुल्क और काउंटरवेलिंग ड्यूटी (सीवीडी) से भी छूट दी गई।

दूसरा महत्वपूर्ण कदम जिसका उल्लेख करना यहां जरूरी है वह यह कि चिकित्सा उपकरणों के आयात पर से आयात शुल्क को 12.5% से घटाकर 7.5% कर दिया गया। हो सकता है इस कदम का फायदा स्वास्थ्य क्षेत्र के निजी खिलाड़ियों को मिले। यह

सच किसी से छिपा नहीं कि भारत में लोगों द्वारा स्वास्थ्य पर किया जाने वाला खर्च का 80% हिस्सा निजी क्षेत्र के हाथों में जाता है।

2005-06 के केंद्रीय बजट में एम्स (AIIMS) की तर्ज पर छह और संस्थान बनाने का प्रस्ताव इस क्षेत्र का एक और महत्वपूर्ण विकास था ताकि अभावग्रस्त राज्यों में चिकित्सा शिक्षा को बढ़ावा मिले। 200-06 के बजट में इसके लिए 250 करोड़ रुपए (बजट अनुमान) का प्रावधान किया गया। 2005-06 के संशोधित आवंटन में आश्चर्यजनक तरीके से 6 करोड़ रुपए की कटौती कर दी गई। 2006-07 के बजट में इस योजना के लिए केवल 75 करोड़ रुपए का प्रस्ताव किया गया जिसे बाद में संशोधित किया गया और केवल 10 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई।

इसका मतलब यही है कि केंद्र सरकार पीछे हटी और इस मुद्दे पर सामने आई जो स्पष्ट रूप से केंद्र की ओर से वायदे में कमी को दर्शाता है और वह इस संदर्भ में अपने वायदे को आगे बढ़ाती है। 2007-08 के बजट में इसके लिए 150 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया।

प्रधानमंत्री ने भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान स्थापित करने के प्रस्ताव पर काफी उत्साह दिखाया। इसमें देश भर में सार्वजनिक स्वास्थ्य का प्रशिक्षण देने के लिए 5-7 संस्थान होंगे। इस संस्था में सार्वजनिक स्वास्थ्य की पढ़ाई के लिए विश्व स्तरीय संस्थान होंगे जो सार्वजनिक-निजी भागीदारी के आधार पर बनाए जाएंगे। यहां दुनिया भर से शिक्षा शास्त्रियों को लाया जाएगा और हर जगह करीब 10 हजार सार्वजनिक स्वास्थ्य पेशेवर तैयार किए जाएंगे। देखने में तो यह प्रस्ताव काफी लुभाना है। जिससे देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रशिक्षितों की कमी दूर हो जाएगी लेकिन इस संस्था की बुनियाद रखने के जो सुझाव हैं वही इसकी समस्या हैं सार्वजनिक-निजी भागीदारी की जो पहल है उससे बहुत मुमकिन है कि ज्यादा फसी वसूली जाए। ऐसे में इन संस्थानों से उच्च वर्ग के छात्र ही निकलेंगे। यह इस पहल की स्पष्ट हार होगी। ऐसे में दूसरे निजी पेशेवर कोर्सों की तरह इस संस्था से निकले स्नातक छात्र भी खुद को ग्रामीण इलाकों में काम करने के लायक नहीं समझेंगे। इससे भी बड़ी बात यह हो सकती है कि सार्वजनिक संसाधनों का इस्तेमाल कर प्रशिक्षित हुए छात्रों का विदेशों की ओर पलायन हो जाए।

यह तर्क दिया जा सकता है कि केंद्र सरकार की ओर से खर्च में कुछ वृद्धि हुई है, लेकिन यह लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में अपर्याप्त है। जबकि राज्य स्तर पर खर्च में वृद्धि नहीं हुई है। इससे एक साल में जीडीपी के 3% के स्तर पर पहुंचना असंभव दिखता है। राज्यों के कर्ज की स्थिति में सुधार और राजस्व उगाहने के वैकल्पिक तरीके खोजने के अगर प्रयास नहीं हुए तो इसमें कोई संदेह नहीं कि लक्ष्य

तक पहुंचाना मुक़िशल हो जाएगा। उन देशों में जहां स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था को व्यापक पहुंच है। वहां टैक्स-जीडीपी का अनुपात स्तर 30-40 प्रतिशत है। जबकि भारत में मौजूदा टैक्स - जीडीपी अनुपात 15 प्रतिशत⁵ के आसपास ही मंडराता रहा है। लोगों की स्वास्थ्य सेवा जरूरतों के मुताबिक यह काफी अपर्याप्त है।

मांगे जो पूरी नहीं हुई

अगर हम केंद्रीय बजट की तुलना पिछले साल की मांगों से करें तो हम पाते हैं कि ज्यादातर मांगें पूरी होने से काफी दूर हैं। जैसे कि यूपीए सरकार का स्वास्थ्य क्षेत्र पर जीडीपी का 2-3% खर्च करने का वायदा अभी भी सपना ही है। हालांकि वास्तविक अर्थों में खर्च में कुछ वृद्धि हुई है। जीडीपी के मुकाबले पिछले तीन सालों में इसमें थोड़ी ही सही वृद्धि तो हुई है। 2004-05 में यह जीडीपी का 0.89 प्रतिशत था। तो 2006-07 में बढ़कर 0.99 प्रतिशत हो गया। इसी तरह सरकार ने वायदा किया था कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत हर साल 30% ज्यादा धन आर्बिट्रिट किया जाएगा। हमने पाया कि इससे कम वृद्धि से राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम का लक्ष्य नहीं पाया जा सकेगा। इस तरह विश्लेषण से पता चलता है कि सरकार अपने वायदे को पूरा करने में नाकाम रही है और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत करीब 18-20% की ही आवंटन में वृद्धि हुई है। हमने यह भी मांग की थी कि केंद्रीय योजनाओं में राज्यों के हिस्से से गरीब राज्यों को छूट दी जाए। दुर्भाग्य से 2007-08 के बजट में गरीब राज्यों की मदद के लिए कोई वायदा नहीं गया ताकि वे अपनी कोष क्षमता को बढ़ा सकें।

भविष्य का एजेंडा : जनता के परिप्रेक्ष्य के मुताबिक मांग

हमने पाया कि पिछले साल की मांगों में से ज्यादातर पूरे नहीं हुए। इस साल एक बार फिर से हमें उन मुद्दों पर जोर देना चाहिए।

- * सबसे पहले तो यूपीए सरकार अपने वायदे के मुताबिक स्वास्थ्य क्षेत्र पर जीडीपी का 3% खर्च करें जो हकीकत से काफी दूर है। केंद्र सरकार को इस बारे में गंभीर कदम उठाने की जरूरत है। अगर राज्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं किया जाता है तो इस लक्ष्य को हकीकत में हासिल नहीं किया जा सकेगा क्योंकि राज्यों पर बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं। राज्यों के खर्च करने की क्षमता को बढ़ाने के लिए उन्हें ज्यादा मदद की आवश्यकता है।
- * स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने की तत्काल आवश्यकता है। कुछ विकल्पों पर विचार किया जा सकता है। प्रोफेशनल टैक्स की तर्ज पर हेल्थ टैक्स शुरू किया जा सकता है। स्वास्थ्य क्षेत्र के जोखिम वाले पदार्थों के उपयोग पर अतिरिक्त लेवी लगाया जा सकता है।

- * पिछले साल हमने मांग की थी कि केंद्र को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत अपने वादे 30% से ज्यादा धन आवंटन करना चाहिए। हमने पाया कि इसमें 30% की भी वृद्धि नहीं हुई है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के लिए अत्यधिक वृद्धि नहीं हुई है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के लिए अत्यधिक वृद्धि बहुत जरूरी है।
- * पूंजी व्यय में बहुत कम वृद्धि हुई है। इस स्थिति में जहां ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाएं पूरी तरह से चरमरा गई हैं वहां इस संदर्भ में अतिरिक्त पहल होनी चाहिए। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ाने के लिए केंद्र और राज्यों को अतिरिक्त संसाधन की जरूरत है।
- * संक्रामक बीमारियों जैसे टीबी से अभी भी बहुत ज्यादा लोग मरते हैं। हालांकि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत इन पर ज्यादा ध्यान दिया गया है लेकिन इन पर खर्च में आवश्यक वृद्धि नहीं हुई है। संक्रामक बीमारियों की रोकथाम पर खर्च करने के लिए कदम उठाने की तत्काल जरूरत है।
- * हमने पहले भी चर्चा की है कि सीमित संसाधनों के कारण गरीब राज्यों को केंद्रीय योजनाओं में अपना हिस्सा देने में दिक्कतें आती हैं। यह केंद्र के हिस्से के उपयोग को प्रभावित करता है और धन खर्च नहीं हो पाता है केंद्र प्रायोजित योजनाओं में राज्यों की हिस्सेदारी का प्रावधान तत्काल प्रभाव से खत्म कर देना चाहिए।
- * प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की कीमत पर एम्स (AIIMS) जैसे संस्थानों की स्थापना नहीं चाहिए।
- * आवश्यक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पानी को गैट से अलग रखने का प्रयास सरकार को हर कीमत पर करनी चाहिए।
- * सभी 354 आवश्यक दवाओं को मूल्य नियंत्रण के तहत लाना चाहिए।
- * क्लिनिकल ट्रायल को बढ़ावा देने के लिए सरकार का कोई कदम नहीं उठाना चाहिए और इस पर से सब्सिडी वापस लेना चाहिए।

उपर्युक्त उपाय बहुत प्रारम्भिक हैं। सभी के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के व्यापक विकास के लिए यह पर्याप्त नहीं हो सकता। पूरी स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था को कायापलट की जरूरत है। अगर हम सही मायने में चाहते हैं कि प्रतिगामी वित्तीय व्यवस्था में बदलाव आए जिसका भारी खामियाजा लोगों को भुगतना पड़ा है, उधार लेना पड़ता है और स्वास्थ्य पर संकट आने पर परिसम्पत्ति तक को बेचना पड़ता है तो इसका रास्ता यही है कि इस क्षेत्र को आज ही भरपूर वित्तीय मदद दी जाए ताकि प्रत्येक भारतीय तक व्यापक स्वास्थ्य सेवा की पहुँच हो। दुर्भाग्यवश अभी तो जरूरी दिशा

में ही किसी सकारात्मक कदम की कमी है कायापलट तो दूर की कौड़ी है।

संदर्भ

एन बाजपेयी और संगीत गोयल (2005) : फाइनेंसिंग हेल्थ फॉर ऑल इन इंडिया, सीजीएसडी वर्किंग पेपर नंबर 25, कोलंबिया विश्वविद्यालय का अर्थ इंस्टीट्यूट, www.earth.columbia.edu, अप्रैल।

डी बनर्जी (2005) : पॉलिटिक्स ऑफ रूरल हेल्थ इन इंडिया, इंटरनेशनल जरनल ऑफ हेल्थ सर्विसेज, 35(4), 783-769, <http://ejournals.ebsco.com/article>

ए बोस (2007) स्पीडिंग अप रिडक्शन इन मेटरनल मोर्टलिटी, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 20 जनवरी।

रवि दुग्गल (2001) : राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2001 के मसौदे पर प्रतिक्रिया, सेहत (CEHAT), मुम्बई, www.cehat.org.

रवि दुग्गल (2007) : हेल्थकेयर इन इंडिया : चेंजिंग दि फाइनेंसिंग स्ट्रेटजी, सोशल पॉलिस एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 4(41), अगस्त, पेज 386-94

बी इकबाल (2006) : जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विसेज एंड दि हेल्थ सेक्टर, इंटरनेशनल जरनल ऑफ मेडिकल एथिक्स, अप्रैल-जून (2)।

भारत सरकार (2002) : राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002, स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

भारत सरकार (2005) : राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना : योजना दस्तावेज, नई दिल्ली, स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय।

जनस्वास्थ्य अभियान (2004) : सभी के लिए स्वास्थ्य, नीति का संक्षिप्त विवरण, राष्ट्रीय समन्वय समिति, जेएसए, नई दिल्ली।

जनस्वास्थ्य अभियान (2006) : भारत में स्वास्थ्य व्यवस्था : संकट और विकल्प, राष्ट्रीय स्वास्थ्य असेंबली की दिशा II, पुस्तिका 2, राष्ट्रीय समन्वय समिति, जेएसए, नई दिल्ली।

आई मुखोपाध्याय (2004) : एनडीएन शासनकाल में स्वास्थ्य क्षेत्र का खराब स्वास्थ्य, पीपुल्स डेमोक्रेसी, 4 अप्रैल, नई दिल्ली।

आई मुखोपाध्याय और प्रसेनजीत बोस (2006) : हांगकांग में डब्ल्यूटीओ की मंत्रिस्तरीय बैठक : सेवा समझौते में भारत की भूमिका, पीपुल्स डेमोक्रेसी, 1 जनवरी, 2006।

इमराना कदीर (2002) : सिकुड़ती जगह, सेमिनार, नम्बर 511, मार्च

राज्य सभा सचिवालय (2006) : स्वास्थ्य व परिवार कल्याण पर स्थायी समिति की 16वीं रिपोर्ट, राज्य सभा, नई दिल्ली।

ए.के. शिव कुमार : बजटिंग फॉर हेल्थ, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, Vol. XL 1391-1396, 2 अप्रैल, 2005